॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

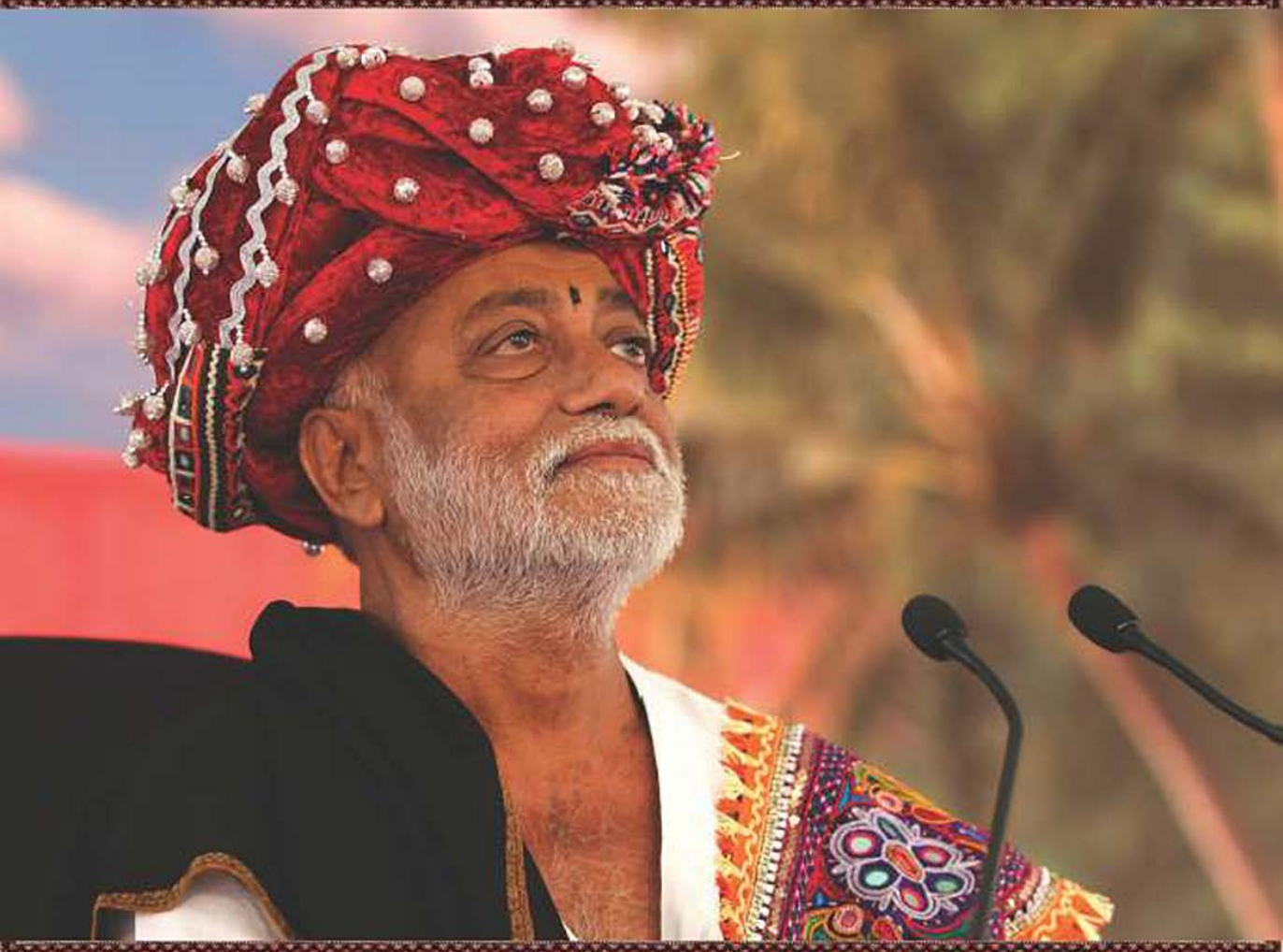

मानस-गुरुपदरज

आदिपुर (गुजरात)

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनऊं राम चरित भव मोचन।।

गुरु भी सहज होना चाहिए, शिष्य भी सहज होना चाहिए

गुरुपदरज मंजुल है, पवित्र है, दिव्यातिदिव्य है

रजोगुण की माया कम करनी हो तो गुरुपदरज का सेवन करना

गुरुपद एक ओर होते हैं, गुरुपदरज चारों ओर घूमती है

गुरुपदरज का अपना शब्द है, स्पर्श है, रूप है, रस है

पराग के रूप में राम अमृत की जड़ीबुट्टी है

व्यासपीठरूपी सद्गुरु की रज है मौन

प्रसन्नतापूर्वक जीना वह भी भजन है

गुरुपदरज का तिलक शिष्य के लिए मांग का सिंदूर है

।। रामकथा ।।
मानस-गुरुपदरज

मोरारिबापू

आदिपुर (गुजरात)

दिनांक : २८-१२-२०१३ से ०५-०१-२०१४

कथा-क्रमांक : ७५४

प्रकाशन :
जुलाई, २०१४

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स
स्वर अेनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने आदिपुर (कच्छ) में दिनांक २८-१२-२०१३ से ०५-०१-२०१४ दरमियान रामकथा का गान किया। यह कथा 'मानस-गुरुपदरज' पर केन्द्रित हुई। सुविदित है कि बापू गुरु, सद्गुरु और गुरुपद के बारे में कथा के प्रवाह में बार-बार अपने विचार प्रकट करते हैं। यह कथा में गुरुपद एवम् गुरुपदरज के विषय में बापू ने अपना विशेष दर्शन व्यक्त किया।

गुरुपदरज यानी गुरु के चरणरज की महिमा स्वीकार कर मोरारिबापू ने गुरुपदरज का नूतन अर्थघटन भी किया, ''आज की दुनिया को समझाने के लिए ओर सरल पड़े इसलिए कहूं कि पद का अर्थ चरण तो है ही, लेकिन गुरुपद यानी गुरु ने गाया हुआ पद, पंक्ति। जैसे कबीर का पद, रवि का पद, भाणसाहब का पद। और वह पद्य में ही कहना जरूरी नहीं, वह गद्य में भी हो। गुरु का एक पद, एक भजन, पद्य या गद्य पूरा का पूरा हम न पचा सके तो चिंता नहीं, उसका सूक्ष्म रज जितना सार भी हमारे जीवन में आ जाय तो हमारा जीवन धन्य बन जाय।''

गुरुपदरज को हमारी पांच इन्द्रियों के विषय-क्षेत्र साथ जोड़ते हुए मोरारिबापू ने कहा, ''गुरुपदरज का एक स्वाद होता है, रस होता है। गुरुपदरज का एक अकल्प्य स्पर्श है। गुरुपदरज का एक अपना बोल है, शब्द है। गुरुपदरज की एक अलौकिक द्युति है, अलौकिक श्री है, अलौकिक प्रभा है, रूप है।'' साथ ही बापू का यह कहना भी हुआ कि ''ऐसी गुरुपदरज का विशेष आध्यात्मिक अनुभव इन साधकों को होता है, जो साधक अंधश्रद्धा और अश्रद्धा से नितांत मुक्त होता है।''

गोस्वामी तुलसीदासजी ने प्रयुक्त 'रज', 'पराग', 'धूरी' और 'रेणु' यह चार शब्दों के विशिष्ट अर्थसंदर्भ है या वे केवल पर्याय ही है, ऐसे प्रश्न के प्रत्युत्तर में बापू ने उस चारों शब्दों का सूक्ष्म अर्थभेद भी बताया। तदुपरान्त बापू ने 'श्री गुरु पद नख मनि गन जोति।' का भी विशिष्ट भाष्य किया और गुरु के पदनख के दस मणि का निर्देश किया। बापू का निवेदन रहा कि गुरु के दांये पैर की पांच नखज्योति है- गुरुप्रसाद, गुरुपूजा, गुरुसेवा, गुरुवचन और गुरुज्ञान। और गुरुमंत्र, गुरुग्रंथ, गुरुआसन, गुरु का चैतन्य एवम् गुरु की नेत्रमणि ये बांये पैर की नखज्योति है।

'मानस-गुरुपदरज' रामकथा अंतर्गत 'मानस' के परिप्रेक्ष्य में गुरुपदरज का सूक्ष्म एवम् सर्वग्राही दर्शन प्रकट हुआ।

– नीतिन वडगामा

गुरु भी सहज होना चाहिए, शिष्य भी सहज होना चाहिए

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनऊं राम चरित भव मोचन।।

बाप, भगवद्कृपा से कुछ यानी चार-पांच सालों के अंतराल के बाद कच्छ की बहुत पुण्यवती धरा पर व्यासपीठ आई है उसकी मुझे बड़ी खुशी है। मैं कह रहा था कि किसी एक डिस्ट्रीक्ट को, एक जिल्ले को इतनी कथा शायद नहीं दी जितनी कच्छ डिस्ट्रीक्ट को दी है। लेकिन कुछ जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि के संकलन न हो पाने से बीच में कुछ साल ऐसे बीतें और इससे पहले कुछ नादुरस्ती के कारण कथा को आखिरी समय में रोके रखना पड़ा। और मैं कुछ कहूंगा तो अच्छा भी नहीं लगेगा सुजान परिवार को, लेकिन इतनी सहजता से आखिरी मौके पर आपने कबूल कर लिया कि, 'बापू, पहले आपकी तबियत का खयाल करो, कथा तो बाद में हो।' थोड़ा समय बीत गया और मैं आज आया। मुझे बड़ी खुशी है।

आदिपुर में रामकथा का आरंभ हो रहा है तब 'मातृ देवो भव' से शुरू करूं तो, आशीर्वाद देने के लिए और पूरे नवदिवसीय रामकथा को प्रकाशित करने आई सभी पूजनीय माताजी और वायज़े मोहतरम आदरणीय मौलानासाहब, आप आये, व्यासपीठ से मैं सलाम पेश करता हूं। और फिर 'आचार्य देवो भव', परम आचार्य महामंडलेश्वर अनंत विभूषित पूज्यपाद भारती बापू और अन्य सभी पूजनीय संतगण, आप सभी मेरे श्रोता भाई-बहन और सुजान परिवार की ओर से पूरी कथा का आयोजन हुआ है निमित्त बनकर उस पूरे परिवार को और देश-दुनिया में विज्ञान के सहयोग से सुनी जा रही इस रामकथा के मेरे सभी श्रावक भाई-बहनों को व्यासपीठ से मैं मोरारिबापू प्रणाम करता हूं।

बाप, मौलानासाहब, मैं अर्ज़ करता हूं मासूम गाज़ियाबादी के एक शेर से -

उसे किसने इज़ाज़त दी गुलों से बात करने की?
सलीका तक नहीं जिसको चमन में पांव रखने का!

बाग में कैसे कदम रखा जाय उसकी रीत-भात भी जिसको पता नहीं, वो छोटे-छोटे अभी खुलनेवाले गुलों से बात करने लगे!

कल भूज में एक युवक ने पूछा कि, 'बापू, किसी कथा में आपने कहा था कि देशधरम, देहधरम और देवधरम, कुछ ओर कहो ना?' मैंने कहा, कल आदिपुर कथा में आना, वहां प्रवाह चलनेवाला है। मैंने कहा, वो प्रवाह तो चला गया, मुझे भी पता नहीं मैंने क्या कहा! लेकिन जाते-जाते युवान को मैंने कहा, बेटा, हमारे मुल्क के प्रति जो हमारी वफादारी, हमारा जो रिश्ता ये देशधरम और देवधरम। जो जिसको माने क्या फ़र्क पड़ता है?

कबीरा कुआ एक है पनिहारी अनेक।
बरतन सब न्यारे भये पानी सबमें एक।

फ़र्क क्या पड़ता है?

अगर तू मंदिर में है, तो मस्जिद में कौन?
अगर तू तस्बी के एक दाने में है,
तो हर दाने-दाने में कौन?

अगर तू बस्ती में पलता है, तो विराने में कौन?
अगर तू शमा में जलता है, तो परवाने में कौन?

देशधरम, देहधरम और देवधरम तभी सार्थक होता है जब दिलधरम हो। जब दिलधरम सलामत नहीं, तब लाख हम बंदगी करे, उपासना करे! दिलधरम है तो देशधरम अक्षुण्ण रहेगा। दिलधरम है तो देहधरम अक्षुण्ण रहेगा। दिल ही नहीं, तो देवसेवा कौन काम की?

कच्छ की धरा, गुरुनिष्ठा का ये टुकडा है। विशेष रूप में मुझे लगा कि इस कथा में 'मानस-गुरुपदरज' पर मेरे गुरु की कृपा से जो बात आये मैं आपके साथ बातचीत करूंगा नव दिन। आपके साथ रूबरू बातचीत है। आदरणीय कनुभाई जानी को मेघाणी एवॉर्ड सौराष्ट्र युनिवर्सिटी ने दिया, वो जब अपना भाव व्यक्त कर रहे थे, वो बोल रहे थे कि आप मेरे सुहृद है, आप मेरे परिवारजन है और परिवारजनों के सामने प्रवचन नहीं किया जाता, बातचीत की जाती है। इसलिए मैं आपसे बातचीत करता हूं। और आप तो मेरा कितना बड़ा परिवार है? 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' इतना बड़ा परिवार है, पूरी दुनिया मेरा परिवार है, ऐसा भारतीय सनातन धर्म की मनीषा उद्घोषित करती है। तो, आप से मैं बात करूंगा। हम और आप मिलकर नव दिन तक 'मानस-गुरुपदरज' उसकी कुछ ओर चर्चा करेंगे। उससे पहले मेरी प्रिय पंक्ति -

गुरु, तारो पार न पायो, हे, न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीअे ...

प्रणव पंड्या की एक कविता है -

होय ना साधुनां सरनामां,
पीछो कर्ये न पामो, सेवो तो मळवाना सामा.

ऐसा कोई परमतत्त्व जिनको हम साक्षात् ब्रह्म मानते हैं।

भारतीय मनीषा ने जिस तत्त्व को ब्रह्म से भी ऊंचा बताया है। ऐसे गुरुपदरज की महिमा का कुछ गायन करके अपने को विशेष रूप से प्रकाशित करेंगे।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।

तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन।
बरनऊं राम चरित भव मोचन।।

तुलसी ने किस गुरु की पदरज को इतनी महिमा प्रदान की? कौन है वो? और पूज्यपाद गोस्वामीजी चरणरज के आशिक है, चरणरज के सेवक है।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।

चरण की ही बात किया करते हैं। और हम जिस 'अयोध्याकांड' के प्रथम दोहे से और 'हनुमानचालीसा' के आरंभ में जो वही दोहा रखा गया है, उससे तो कथा का आरंभ करते हैं।

श्री गुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि।।

किस गुरु की ये पदरज की महिमा है? कौन है वो? कौन है अज्ञात? पता नहीं चलता ये कौन है! भगवान वेद की ऋचा कहती है शिष्य को जब उपनयन संस्कार हो जाता है, यज्ञोपवित संस्कार, उसके बाद गुरु तीन रात्रि तक उस शिष्य को गर्भ में रखता है। शारीरिक रूप से नहीं। और गुरु को डर लगता है कि ये बच्चें की मुक्ति तो हुई माँ के पेट की चेतना से, लेकिन संसार इतना चारों और व्यस्त है कि इसमें ये आबद्ध हो जायेगा! इसलिए उपनयन के बाद तुरंत गुरु अपने गर्भ में तीन रात्रि रखता है। तो वहां शारीरिक रूप से गर्भ में लेने की बात नहीं है, लेकिन लिखा है 'शब्दगर्भ।' अवश्य। फिर गुरु उसको जनम देता है। द्विज बनाता है। गुरु के गर्भ में दीक्षित होता है। और फिर ऐसे गुरु की पदरज उसकी महिमा का उसको अनुभव कराता है, ऐसा वेदविधान है।

साहब, उपनयन का मेरी व्यासपीठ का मतलब है, जो हमें गर्भ में रखने के लिए तीन रात्रि तैयार हुए है, उससे मिलते हुए नेत्र जिसके हैं, जिससे उसको पता लगे कि इसमें कुछ है। मैं आपको निवेदन करूं कि अध्यात्म के पाठ पढ़ते हो तो कोई बुद्धपुरुष की आंख पहले देखना। बुद्धपुरुष जिसको गर्भ में लेना चाहता है उसकी आंखों को देख लेता है। मेरी समझ में ये भी है और गर्भ में रखना मिन्स जिसकी आंख गुरु ने पहचान ली है कि ये मेरे जैसी थोड़ी आंख है, उसको उदर में नहीं रखता। ऐसे शिष्य को अपनी आंखो कें गर्भ में रखता है। केवल तीन रात। तीन रात में तो त्रिभुवन का काम हो जाय! गुरु की आंख आश्रित का गर्भ है। किस गुरु की आंख? जिसमें जलतत्त्व ज्यादा है। और रात क्यों? रात इसलिए कि गर्भ उसको कहते है जो बंद हो। गर्भ खुला नहीं होता। इसलिए बच्चा माँ के गर्भ से आता है तब मुक्त हो कर आता है। तब तक वो गर्भ में बंद था। रात्रि करीब-करीब बंद आंखों की मौसम है। ईश्वर ये मौसम हमें रोज देता है। बंद आंखों का मतलब नींद नहीं, ऊंघ नहीं। बंद आखों के गर्भ का मतलब है इसमें जिस चेतना को मैंने समाविष्ट किया है, वो चेतना तीन दिन तक सुरक्षित रह जाय तो त्रिभुवन में बेड़ा पार हो जाय। गुरु के लिए तीन रात्रि पर्याप्त है। 'अथर्ववेद' के मंत्र में मुझे स्मरण है, उसमें लिखा है कि तीन दिन के बाद जब आश्रित को अपने निरंतर मनन से केवल आश्रित को आंख में घूमा-घूमाकर फिर वो जगत के इस मैदान में चेतना को रखता है तब उस पर देवता पुष्पवृष्टि करते हैं। ऐसे कोई गुरु, ऐसे बुद्धपुरुष की पदरज की तुलसी महिमा गा रहे हैं।

उपनयन मेरी दृष्टि में एक ऐसी खिलती हुई चेतना का विशेषण है। खिलने के लिए उत्सुक चेतना, जगत को सगुन देने के लिए इस धरा पर आनेवाली एक कोई पावनी चेतना का विशेषण है उपनयन। मेरी व्यासपीठ जब शिष्य को उपनयन के साथ जोड़ती है तब एक विशिष्ट प्रकार का आश्रित। बाकी 'रामचरित मानस' को मैं देखता हूं गुरुकृपा पाई दृष्टि से तो मुझे लगता है, शिष्य कई प्रकार के होते हैं। सात तो होते ही हैं, जो सात कांडों में मुझे मिलते हैं।

एक, शरती शिष्य, जो गुरु से शर्त करता है। मैं तेरा आश्रय तो करूं, जो मुझे ये मिले। ये शर्त है। दूसरे शिष्य की व्याख्या है पारंपरिक शिष्य। परंपरा में चला आता शिष्य। तीसरा शिष्य होता है कृत्रिम। असली नहीं है, नकली है। उनकी प्रत्येक चेष्टा कृत्रिम होगी। चौथा होता है जिज्ञासु शिष्य। जो समित्पाणि बनकर कोई बुद्धपुरुष के पास जाता है और अपने भीतर ज्ञान की अग्नि या तो प्रेम की या वैराग्य की अग्नि, सबको अग्नि का दर्जा मिला है शास्त्रों में, वो बुझ-बुझ हो रही है, उसको फिर से प्रज्ञवलित करने के लिए समिध लेकर गुरु के पास जाता है। समित्पाणि लेकर जाता है ये जिज्ञासु शिष्य है।

पांचवां शिष्य है जो केवल प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए गुरु का नाम यूझ करता है, निष्ठा का नामोनिशान नहीं! जब किसी की निष्ठा बदल जाय तो समझना निष्ठा थी ही नहीं, होती तो बदलती नहीं। प्रतिष्ठा पाने का एक आयाम था, एक प्रयास था। कुछ साल तक आदमी सफल भी हो जाता है। प्रतिष्ठा से सुविधा मिलती है, सुख नहीं मिलता। सुख मतलब आत्मीय सुख। जिसको मेरे गोस्वामीजी 'स्वान्तः सुख' कहते हैं। सातवां वो मुझे बहुत प्रिय है वो है सहज शिष्य। इरादो करीने न आव्यो होय साहेब, पण क्यांक भेटो थई जाय। अरे रे, में तो गोत्युं नोतुं इ जडी गयुं! मान लो, हम आध्यात्मिक मारग के यात्रिक भी नहीं है, हम जा रहे थे अर्थ कमाने के लिए, अनगनित इरादे थे हमारे, लेकिन बर्नर तपा हुआ था, कोई कांडी की जरूरत थी। आग प्रकट हो जाय। गुरु भी सहज होना चाहिए, शिष्य भी सहज होना चाहिए। सहजता कायम रहती है। जो सहज गति करता है उसकी सहजता, कभी क्षणभंगुर नहीं होती, शाश्वत होती है। असहजता टूटती है, बनती है, टूटती है! सात प्रकार के शिष्य मुझे 'रामचरित मानस' की यात्रा में रास्ते में मिलते रहते हैं, जो मैं आपके सामने खोल रहा हूं। गुरु गज़ब होता है। गुरु अंदरनो गांजो छे। एक सट मारी एने त्रिभुवनमां लागी गई!

'रामचरित मानस' की ये कथा है। सात सोपान का ये शास्त्र है। 'बाल' प्रथम सोपान, 'अयोध्या' दूसरा

हनुमंततत्त्व निरंतर जाग्रत तत्त्व है, शिव का अवतार है। हनुमान सत्य का उपासक है। योग में प्रवेश होना है, सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; ज्ञान में सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; भक्ति में सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; सेवा में सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; दासत्व शुद्ध रखना है, करो हनुमंत-आराधना; अजर-अमर होना है, करो हनुमंत आराधना। रोज ताज़े-तरोज़े रहना इस अर्थ में अजर-अमर। प्रफुल्लित-प्रसन्न रहना है, करो हनुमंत-आराधना।

सोपान, 'अरण्य'तीसरा सोपान, 'किष्किन्धा' चतुर्थ सोपान, 'सुन्दर' पंचम सोपान, 'लंका' छठ्ठा सोपान, 'उत्तर' सातवां सोपान। तुलसी का प्रथम सोपान है, इसमें मंगलाचरण भी सात मंत्रों से किया है। मंगलाचरण का पहला मंत्र -

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

तो, गुरुवंदना से शास्त्र का आरंभ होता है।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

मंगलाचरण के बाद पंचदेवों के बाद पहला प्रकरण गुरुवंदना है, जिसको व्यासपीठ 'मानस-गुरुगीता' समझती है। तो, गुरु की चरणरज से दृष्टि को पवित्र करके तुलसी रामकथा का वर्णन करने अग्रसर होते हैं। जिसको गुरुचरणरज का अंजन मिला है उसको पूरी दुनिया में समदृष्टि आयेगी इसलिए यहां सबकी वंदना समस्त रूप से आती है। और 'सीय राममय सब जग जानी' कहकर तुलसी ने जगत को राममय समझकर प्रणाम किया। और इसी दृष्टि लेकर वंदना करते जाते हैं। आगे इनमें दशरथजी की, जनकजी की, माँ कौशल्याजी की, भरत आदि चारों भाईयों की वंदना की। और फिर बीच में हनुमानजी की वंदना करते हैं। मेरी व्यासपीठ का क्रम रहा कि पहले दिन की कथा हम करीब हनुमंतवंदना तक लिए चलते हैं। गोस्वामीजी ने हनुमंतवंदना की -

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

श्री हनुमान की वंदना की। हनुमानतत्त्व की वंदना की। हनुमानजी मेरी दृष्टि से अति सुंदर तत्त्व है, वानराकार है अवश्य, लेकिन सुंदरतम तत्त्व श्री हनुमानजी है। सबको स्पर्श करते हैं हनुमान। सार्वभौम देव है हनुमान। हनुमंततत्त्व निरंतर जाग्रत तत्त्व है, शिव का अवतार है। हनुमान सत्य का उपासक है।

कंचन बरन बिराज सुबेसा।
कानन कुंडल कुंचित केसा।।

तो, ऐसे हनुमानजी महाराज की वंदना की। हनुमंततत्त्व की प्रार्थना, स्तुति, सेवा, कोई विशिष्ट अनुष्ठान में पाबंदी हो तो ठीक बाकी, बहन-भाई सब कर सकते हैं।

लंकाविजय के बाद हनुमानजी जानकीजी को खबर देने गये तब सभी राक्षसियां दौड़कर हनुमानजी की पूजा करने लगती है। तो, राक्षसी यदि पूजा कर सकती है तो मेरे देश की माता क्यों न कर सके? देश की बेटी क्यों न कर सके? ये पवनतत्त्व है, प्राणतत्त्व है, जीवनतत्त्व है।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।

बंदौ राम-लखन-बैदेही।
जे तुलसी के परम सनेही।।

योग में प्रवेश होना है, सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; ज्ञान में सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; भक्ति में सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; सेवा में सफल होना है, करो हनुमंत-आराधना; दासत्व शुद्ध रखना है, करो हनुमंत-आराधना; अजर-अमर होना है, करो हनुमंत आराधना। रोज ताज़े-तरोज़े रहना इस अर्थ में अजर-अमर। बाकी शरीर तो जीर्ण होगा। शरीर तो काम करेगा अपना। प्रफुल्लित-प्रसन्न रहना है, करो हनुमंत-आराधना। आज की कथा को हनुमंतवंदना से विराम देता हूं।

गुरुपदरज मंजुल है, पवित्र है, दिव्यातिदिव्य है

बाप, 'मानस-गुरुपदरज' जिसकी इस कथा में प्रधानरूप से हम बातें करेंगे। 'अथर्ववेद' का मंत्र है। उसका उच्चारण भी संस्कृत के परम पंडित होते हैं वो ही ठीक से कर सकते हैं। बड़ा जटिल है। कहीं न कहीं चूक रह जाती है। मैंने शब्दों को बिलग-बिलग करके मेरी सरलता के लिए, आपकी भी सरलता के लिए कोशिश की है। हम सब ये शब्द का उच्चारण करें -

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

आचार्य को प्रार्थना की जाती है कि आप इस बालक को अपने गर्भ में रखो। गुरु अपने उदर में तीन रात्रि रखता है। उसके बाद उसका पुनर्जन्म होता है। सभी देवता उसको वंदन करने के लिए, अभिनंदन करने के लिए उस पर

फूल की वर्षा करने के लिए, शिष्य को देखने के लिए धरा पर आते हैं। कौन है वो गुमनाम? कौन वो गुरु है अनजान? और इस दुनिया में जितने भी बुद्धपुरुष आये हैं सब बदनाम होकर गये हैं! कभी नरसिंह मेहता आये, जेलवास! कभी मीरां आई, ज़हर का पान! कभी जिसस आये, जिसस जैसे प्रेमभरा एक तत्त्व जिसको वधस्तंभ मिला! सुक्रात को विष पीना पड़ा! क्रिष्नमूर्ति के जाने के बाद बदनामियों के ढेर लगे! बुद्ध, महावीर, तुकाराम, स्वयं तुलसी, किन-किनका नाम लें! सीता भी यहां बदनाम हुई!

मेरे पास प्रश्न आया है, ''बापू, कथा सुनते-सुनते 'मानस' का रोज पाठ करते हैं, लेकिन गुरु की महिमा जितनी बयां नहीं की गोस्वामीजी ने इतनी गुरुपद की महिमा गाई है? या तो गुरुपदकमल का या तो गुरुपदरज, जो इस कथा का विषय है।'' मैं जवाब देना चाहूं कि तुलसी भी समझ रहे हैं कि गुरु के पद का वर्णन हो सकता है, गुरु की पदरज का वर्णन हो सकता है, गुरु की जुबान का वर्णन हो सकता है, गुरु के वर्तन का भी वर्णन हो सकता है, लेकिन समग्र गुरु का वर्णन कोई नहीं कर सकता। न वेद कर सकता है, न आगम कर सकता है। इसलिए हम ये पंक्ति गाते हैं -

गुरु, तारो पार न पायो, हे, न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीअे ...

तो बाप, गुरु की समग्रता का पार पाना करीब-करीब असंभव है। यद्यपि हम गुरु के गर्भ में रहते हैं फिर भी। जैसे कि मछली सागर में रहते हुए, सागर में जनम, सागर में जीना, सागर में ही मरण, सब कुछ सागर में ही होता है, लेकिन मछली पूरा समग्रतया समुद्र का पार नहीं पा सकती वैसे ही गुरु को समुद्र कहा है 'रामचरित मानस' में -

गुर बिबेक सागर जगु जाना।
जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना।।

विवेकसिंधु है गुरु। इसलिए गुरु का वर्णन 'मानस'में, गुरुपदरज की तुलना में कम है। क्योंकि हो नहीं पाता। थोड़ा बहुत कह सकते हैं जिन्हों ने गुरु के घाव सहन किये हो। और जब घाव लगे तब बोलना ओर मुश्किल होता है! घाव से पीड़ित को कहे कि कैसे गाये, कैसे मुस्कुराये?

नज़दीक आते-आते हम दूर हो गये हैं।
साथ में आंसूओं के कोई कैसे मुस्कुराये?

इसका राज़ क्या है? कभी-कभी हमारी निष्ठा के कारण गुरु के बहुत नज़दीक जाते हैं हम, लेकिन निष्ठा कमज़ोर होते ही दूर हो जाते हैं! घाटे का सौदा मत करना। आप और हम प्रतिष्ठा के कारण निष्ठा बदलते हैं, तब क्या भरोसा तुम दूसरी जगह गये वहां भी टिकोगे कि नहीं? कौन भरोसा करेगा?

तो, मुश्किल पड़ता है कि कैसे गुरु का वर्णन करे? इसलिए हम रज के उपासक है। ऐसा कोई जाग्रत पुरुष मिल जाय तो उनकी रज; रज यानी क्या? उसके आठ भाष्य। आज पहला भाष्य, रज यानी क्या? सिर्फ धूल गुरु के पद की? यद्यपि ये रज महिमावंत है। उसको मैं नकार नहीं सकता। गुरुपदरेणु। अब ये स्थूल रूप में रज की बात करें तो फिर बौद्धिक लोग कहेंगे ये तो व्यक्तिपूजा हो गई, ये तो भावुकता है। हां, व्यक्तिपूजा का खतरा जरूर है वहीं, फिर भी मैं मेरे अनुभव से कह सकता हूं रज का निरादर नहीं किया जाता। रज रज है।

लेकिन आज जिस काल में हम जी रहे हैं उसके संदर्भ में इस काल में बडा वास्तविक होना चाहिए। और मैं मेरी रामकथा को ज्ञानयज्ञ नहीं कहता हूं, प्रेमयज्ञ कहता हूं। ज्ञान में गिनती होती है, सोपान होता है। प्रेम में क्या?

तो बाप, रज मानी क्या? गुरुपदरज की महिमा अवश्य है। व्रजरज की महिमा बहुत है, साहब। गोरज की भी महिमा है। लेकिन वास्तविकता के धरातल पर उसका ओर चिंतन जरूरी है। गुजराती में कहते हैं कि रजमात्र, यानी छोटे से छोटा, सूक्ष्मतम एकम। इससे छोटा अणु-परमाणु करते-करते विज्ञान खोज सके। लेकिन रज मानी एक अंतिम परिमाण। इससे सूक्ष्म हम कुछ नहीं देखते, रजमात्र।

गुरुपदरज यानी गुरु के चरण की रज। चरण की महिमा अद्‌भुत है। मैं तो उसका समर्थक और व्यक्तिगत रूप में पूजक हूं। लेकिन आज की दुनिया को समझाने के लिए ओर सरल पडे इसलिए कहूं कि पद का अर्थ चरण तो है ही, लेकिन गुरुपद यानी गुरु ने गाया हुआ पद, पंक्ति। और वह पद्य में ही कहना जरूरी नहीं, वह गद्य में भी हो। जैसे कबीर का पद, रवि का पद, भाणसाहब का पद। पद गाने के लिए भी हो और एक गद्यखंड में भी हो। जैसे भजन में आखिरी पद में सार हो, अर्क हो, निचोड़ हो। हमारे यहां वेदांत में एक वाक्य प्रसिद्ध है, 'पद-वाक्य प्रमाणं।' गुरुजनों के पद पद-वाक्य प्रमाण माने जाते हैं। तो, गुरु के एक पद में गुरु का एक भजन, पद्य या गद्य, पूरा का पूरा हम न पचा सके तो चिंता नहीं, लेकिन उसका सूक्ष्म रज जितना भी हमारे जीवन में आ जाय तो हमारा जीवन धन्य बन जाय।

तो बाप, गुरु के पद या वाक्य का आखिरी अंश, रज जिनको मिल जाय, स्थूल रूप में नहीं, बल्कि सूक्ष्मतम रूप में, वह रज के संदर्भ में हमें विधविध रूप में दर्शन करना है। गुरु के पद-वाक्य प्रमाण माने गये हैं, उनका छोटा-सा अंश शिर पर लगाना वो गुरुपदरज वंदन है। एक शे'र है मेरे पास -

सुकुन मेरे नसीब का था जब तक वो तेरे पास रहे।
फिर उसके बाद जहां भी रहे उदास रहे।

हे जाग्रत चेतना, ये मेरे नसीब में लिखी हुई शांति थी कि जब तक तेरे पास रहे। ये है गुरुपदरज का करिश्मा। नीतिनभाई वडगामा का एक पद है -

साहिब, संभाळे छे बाजी।
एक ईशारे अटकी जाती, सघळी ये ताराजी।

कृपा की एक रजकण से हमारी तमाम ताराजी दूर हो जाती है, क्योंकि 'साहिब, संभाळे छे बाजी।'

ए ज दिशा देखाडे, पाछा ए ज हलावे होडी।
जाय नहीं ए क्यांय जीवने अधवच्चे तरछोडी।
मुकाम मळतावेंत जीव थई जातो राजी-राजी।
साहिब, संभाळे छे बाजी।

जीव को अकेला छोड़कर गुरु कहीं भी नहीं जाता। जिस पंक्ति का हमने आश्रय किया है उसमें लिखा है ये रज मृदु है। किसी महापुरुष के पद में कहीं कठोरता हो सकती है, लेकिन आखिर रज तो अत्यंत कोमल होती है। जिसको साहित्यिक भाषा में कहना हो तो बुद्धपुरुष की कठोर कृपा होती है। कभी-कभी माँ-बाप कठोर दिखाई दे, लेकिन अंतिम उद्देश उनका होता है कोमल।

गुरुपद की रज मंजुल है, सुंदर है, निष्पाप है, पवित्र है, दिव्यातिदिव्य है।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।

गुरुवंदना के पूर्व पदों में गुरुचरणरज यानी पराग को पूर्ण बताया है। यहां एक दूसरी बात आ गई है, गुरुचरणरज ये बिलकुल सुकोमल ऐसा अंजन। और हमारे नेत्रों के लिए ये नयनामृत है, नेत्रामृत है। गुरु की कोमल रज, सुंदर रज, पावक रज नेत्रों का नयनामृत है और आंख के दोषों को नष्ट करता है। आंख के कौन-कौन दोष? आंख में कई रोग है, झामर, मोतीयो, कमळो।

मेरी व्यासपीठ की दृष्टि से झामर ये अहंकार का दोष है। आंख का एक धर्म है समदृष्टि। समानता जरूरी है। दृष्टि में जब विषमता आ जाती है, अहंकार का झामर

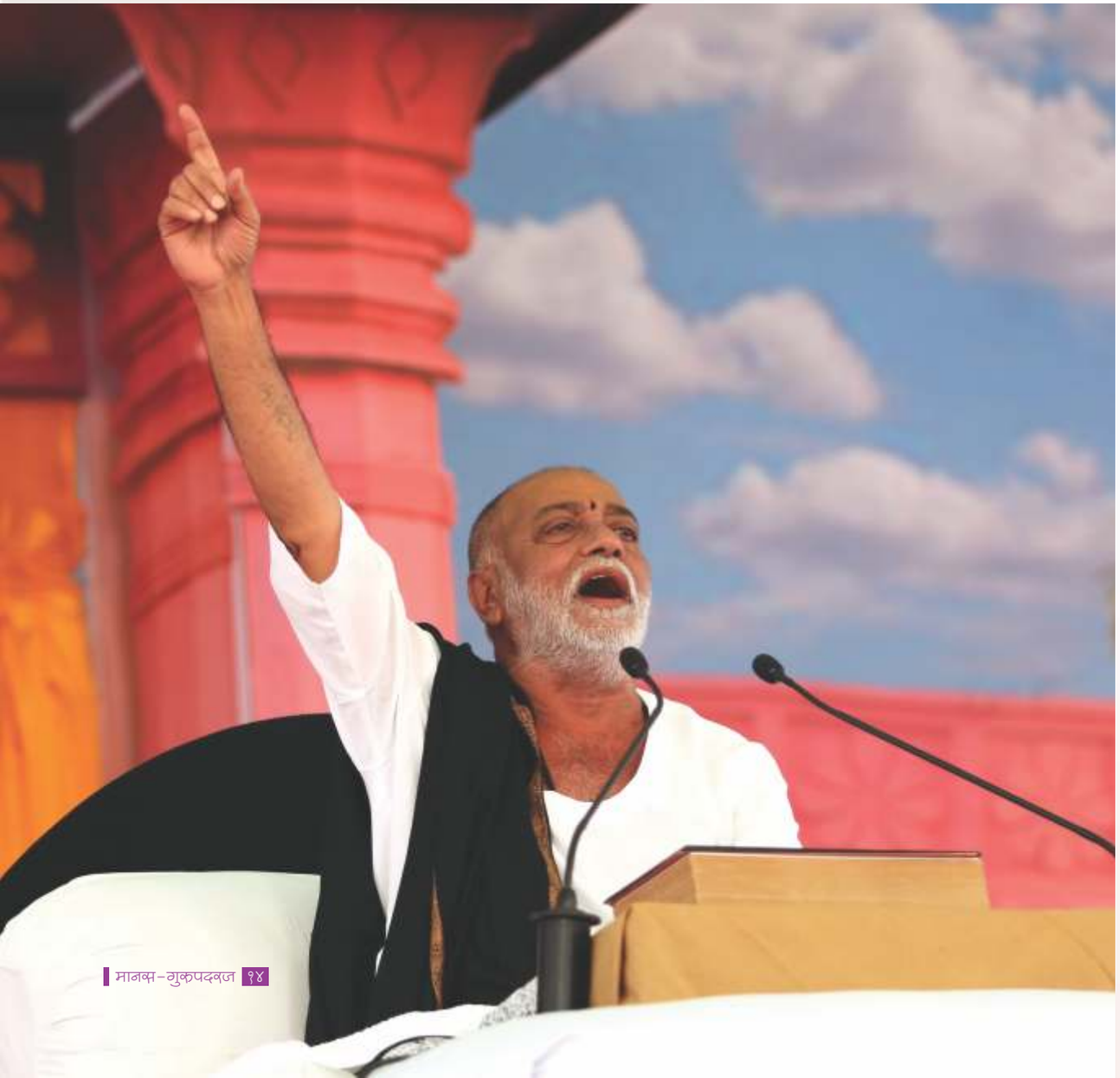

लगने लगता है। दृष्टि जब असमान होती है तब अहंकार पुष्ट होता है। दृष्टि अहंकार गवां दे और विकार को प्रधानता दे। 'रामचरित मानस' का बहुत बड़ा पात्र संपाति, उसकी पांख कमजोर है, लेकिन संपाति ने बंदर ग्रूप को कहा, 'मेरी गीध की दृष्टि अपार है, मैं जानकी को यहां बैठे देखता हूं, क्योंकि मेरी आंख बहुत पावरफूल है।'

अहंकार का झामर गुरु के एक बोल से ऊतर सकता है। मोतिया अवस्था के कारण आता है। अवस्था का बड़ा रोग है चीड़-चीड़ करना, अकारण क्रोध करना, शांत परिवार में कंकर डालकर वमळ पैदा करना। बाप, मेरी समझ में, मेरे कुछ अनुभव में, मोतिया का नेत्रदोष गुरुचरणरज से ऊतरता है; कोई बुद्धपुरुष की चरणरज से ऊतरता है। मोतिया बिंद गुरुकृपा से मिटेगा।

और तीसरा है कमळा। गुजरातीमां कहीए छीए के कमळो होय एने पीळुं देखाय। और पीला रंग लोभ का है। शास्त्र में पीला रंग लोभ का बताया है। यह रोग ऐसा है, जिनको सब पिला ही लगे। जिनको पौराणिक भाषा में हिरण्याक्ष कहते हैं। तो, ये लोभ कौन टालेगा? लोभवृत्ति को कौन नष्ट करेगा? तुलसी कहते हैं -

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया।

लोभ का फंदा जिसके गले में नहीं बंधा था वो तो दूसरा राम है। गुरुचरणरज से लोभ की मात्रा कम होती है। औषधि है गुरुचरणरज। बहुत बड़ा चूर्ण है। 'रामचरित मानस' में गुरुरूपी वेद का छ रूप है। जिसकी रज लो। छ रूप का निर्देश गोस्वामीजी ने 'मानस' में ओलरेडी किया है। और वो गुरु है बुद्धपुरुष, जाग्रत पुरुष गुरु है वैद।

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा।।

आध्यात्मिक प्रक्रिया में और वैदिक प्रक्रिया में भी डोक्टर हकीम जो भी हो, उनके वचन पर विश्वास करना ये पहला कर्तव्य है। गुरुचरण में एक भरोसा। और भरोसा बहुत महत्त्व की चीज़ है।

तो बाप, हमारी आंख के त्रिदोष। उम्र होते बार-बार गुस्सा आना। दूसरा, चारों ओर अपनी प्रकृति के अनुसार सब दिखने लगते हैं और तीसरा जामर लगने लगता है। ये तीनों दोषों से मुक्त होने के लिए गुरुपदरज एक बहुत बड़ा चूर्ण है, नयनामृत है। अत्यंत सुकोमल और सुंदर अंजन है, ऐसी गुरुपदरज की महिमा तुलसी ने लिख दी।

तो, ऐसे छ प्रकार के वैद 'मानस' में गुरुरूप में है। एक है गुरु -

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

दूसरा श्री गुरु -

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।

तीसरा है कुलगुरु -

कुलगुरु सम हित माय न बापू।

जिसको आप धर्मगुरु कह सकते हो। कुलगुरु, धर्मगुरु, जो कहो। चौथा सद्गुरु,

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के।

•

'सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।'

ये चौथा वैद। पांचवां -

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।
आन जीव पाँवर का जाना।।

पांचवा वैद है त्रिभुवन गुरु और छठ्ठा वैद गुरु जगद्गुरु -

जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं।
भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं।।

गोस्वामीजी ने हमारी मनोविकारी को मिटाने के लिए छ रूप में वैदों की स्थापना की, जो हमारी मानसिक चिकित्सा करते हैं। उपनिषद में गुरु मानी गुरु; यहां गुरु का विभाजन नहीं है। सद्गुरु मेरा प्रिय तत्त्व है, इसलिए मैं कहता हूं। और भगवान शंकर त्रिभुवन गुरु है। वशिष्ठजी कुलगुरु है और फिर 'क्रिष्नं वंदे जगद्गुरुं।' 'श्री' शब्द बड़ा प्यारा है।

'महाभारत' में एक प्रसंग है, भीष्मदादा बाणसैया पर है। क्रिष्न ने युधिष्ठिर से कहा, तुझे कुछ जानना हो तो दादा के पास से जान लो। दादा को उत्तरायण में प्राण छोड़ने है। कई प्रश्न युधिष्ठिर ने पूछे। उसमें एक प्रश्न है कि, 'दादा, आप बताते जाओ हमको, इस दुनिया में पूज्य किसको मानना? हम किसकी पूजा करे? हम किसको श्रेष्ठ समझें? हम किसके चरण में शिर रखें? कौन है पूज्य?' दादा ने कहा, 'एक बार तो मैंने दुनियाभर को ये निर्णय दे दिया जब यज्ञ में प्रथम पूजा किसकी करनी? इतने विरोधों के बावजूद मैंने कह दिया कि प्रथम पूजा क्रिष्न की होनी चाहिए। क्रिष्न जगद्गुरु है। युधिष्ठिर, पहला सूत्र, जो तपोधनी हो उसको पूज्य मानना।' तपोधनी का अर्थ जिसके पास तपस्या का धन हो। 'सूरवालों का संग करना, लयवालों का संग करना जिसके पास लयबद्धता है। जिसके पास शब्द का ज्ञान है। जो शब्द के मरम को जानता है।' तालवाळानो संग करवो, बेतालनो संग न करवो। रसवाळानो संग करवो, मारां भाई-बहेन। तो बाप, तपोधनी हो उसकी पूजा करना। तप की महिमा तुलसी ने बहुत गाई है। ये पूरा ब्रह्मांड तप के आधार पर रहता है। तपस्या से ब्रह्मांड का सर्जन होता है, परिपालन होता है। नवसर्जन के लिए प्रलय है।

आजके जगत में कौन ऐसा तपोधनी? कौन गुरु, श्रीगुरु, कुलगुरु, त्रिभुवनगुरु, सद्गुरु, जगद्गुरु कौन है? मेरी समझ में पांच प्रकार के शब्द की अग्नि को सह ले वो आज के युग का तपोधनी है। शब्द अग्नि है, शब्द आग है। पांच प्रकार के शब्दों की ज्वालायें तुम्हारी ओर लपटती आये और ऐसे समय में तुम इन पांच प्रकार के बोलों को सहन कर लो ये आज का इस सदी का तप है। शब्द मारी नाखे साहेब! अेमांय गुरुनो शबद धोई नाखे! ज्ञान को भी अग्नि कहा है। वैराग को भी अग्नि कहा है। प्रेम को भी अग्नि कहा है हमारे ग्रंथों ने। अपशब्द जैसे अग्नि है, वैसे गुरु का शुभ शब्द भी अग्नि है। बच्चा कुपुत्र हो सकता है, माता कुमाता नहीं बनती। गुरु तो दुनियाभर की माँ का विग्रह है। एक गुरु में विश्व की जनेता समायी है। शब्द अग्नि है। शब्द मारे, शब्द जिवाडे; शब्द सुवाडी दे, शब्द जगाडे। जामवंत ने कहा, 'हनुमान तुम्हारा कार्य राम के लिए है और तुम चूप बैठे हो?' और सुनते ही पर्वताकार हुए। शब्द सेतु बंधावे, शब्द सेतु तोड़े भी। शब्द अनर्थ का निर्माण भी कर सकता है। शब्दों द्वारा होती निंदा एक अग्नि। शब्दों द्वारा फैलाई गई गैरसमज़ दूसरा अग्नि। शब्दों द्वारा खानगी में वार्तालाप तीसरी अग्नि। फिर भी बुद्धपुरुष अपने आश्रित पर भरोसे को कभी हिलने नहीं देते।

जैन धर्म में कथा है, सुदत्त नाम का एक साधक है। सुदत्त गुरु का चरण सेवकर उसकी रज का पान करके निकलता है और सुदत्त ने गुरु को पूछा कि मेरा फ़र्ज़ बनता है, मैं आपको क्या दूं? मुनि ने कहा, 'मैंने लेने के लिए तुम्हें आश्रित नहीं बनाया है, तुझे योग्य समझकर मैंने विद्या दी है। जाओ विद्या का सदुपयोग करो।' शब्द वहेंचो। शब्द किसी मूल्य पर नहीं मिलता, क्योंकि ये अमूल्य होता है। घर में, परिवार में किसी ने इधर-उधर शब्द सुना दिये तो सोने से पहले उसका समाधान करके सोना, उसको दिल में भरे मत रखो।

दूसरा पूज्य कि जो अपने मुख से कभी आत्मश्लाधा नहीं करता, जो अपने मुख से अपना बयान, अपनी प्रशंसा नहीं करता। आत्मश्लाधा आत्महत्या है। 'महाभारत' में जब युधिष्ठिर को लगा कि अर्जुन ठीक से युद्ध नहीं करता है, मन लगाकर युद्ध नहीं करता है, तो उसने अर्जुन के गांडीव धनुष का अपमान कर दिया, 'धिक् है तेरे गांडीव को, क्या गांडीव रखा है, तू कुछ करता तो नहीं!' और अर्जुन की एक प्रतिज्ञा थी कि मेरी निंदा करेगा तो मैं सह लूंगा, लेकिन मेरे गांडीव की कोई निंदा करेगा तो मैं उसका प्राण हर लूंगा। और अर्जुन भाई का प्राण लेने के लिए तैयार हुआ।

भगवान क्रिष्न ने कहा, 'अर्जुन रुक, बड़े भाई को मार देना?' बोले, 'मेरी प्रतिज्ञा है।' 'बड़े भाई, अपने से जो श्रेष्ठ है उसको अपमानित शब्द सुना देना उसकी हत्या है। दो-तीन गाली दे दे बड़े भाई को, अपमान कर ले, तेरा वचन रह जाएगा और तुझे मारने का कलंक नहीं लगेगा।' क्रिष्न ने ये रास्ता निकाला। अर्जुन ने दो-तीन बातें बोल दी, मृत्यु हो गई! फिर बोलनेवाला अर्जुन रोने लगा, 'मेरी ये भी प्रतिज्ञा है कि मैं कभी ज्येष्ठ का अपमान करूं तो मैं आत्महत्या करूंगा। अब मैं मरुं।' क्रिष्न वहां भी बीच में आये, बोले, 'तू अपने मुख से अपनी प्रशंसा कर, तेरी आत्महत्या हो गई। अपनी आत्मश्लाधा कर ले, तू मरा।'

'जिसके मन कभी भी कोई पद, पैसा, प्रतिष्ठा की आकांक्षा न प्रकट हुई हो उसकी पूजा करना।' जिसने कभी लोगों का शोषण करने का पाखंड न किया हो। जो पाखंड से मुक्त है, जिसकी प्रत्येक क्रिया हमको प्रसन्न करने के लिए होती है ऐसे गुरुजन की पूजा करनी। ये सब 'महाभारत' के सूत्र है और आज के संदर्भ में इतने ही उपयोगी सूत्र है।

गुरुपदरज यानी गुरु के चरण की रज। चरण की महिमा अद्भुत है। मैं तो उसका समर्थक और व्यक्तिगत रूप में पूजक हूं। लेकिन आज की दुनिया को समझाने के लिए और सरल पडे इसलिए कहूं कि पद का अर्थ चरण तो है ही, लेकिन गुरुपद यानी गुरु ने गाया हुआ पद, पंक्ति। जैसे कबीर का पद, रवि का पद, भाणसाहब का पद। पद गाने के लिए भी हो और एक गद्यखंड में भी हो। हमारे यहां वेदांत में एक वाक्य प्रसिद्ध है, 'पद-वाक्य प्रमाणं।' गुरुजनों के पद पद-वाक्य प्रमाण माने जाते हैं।

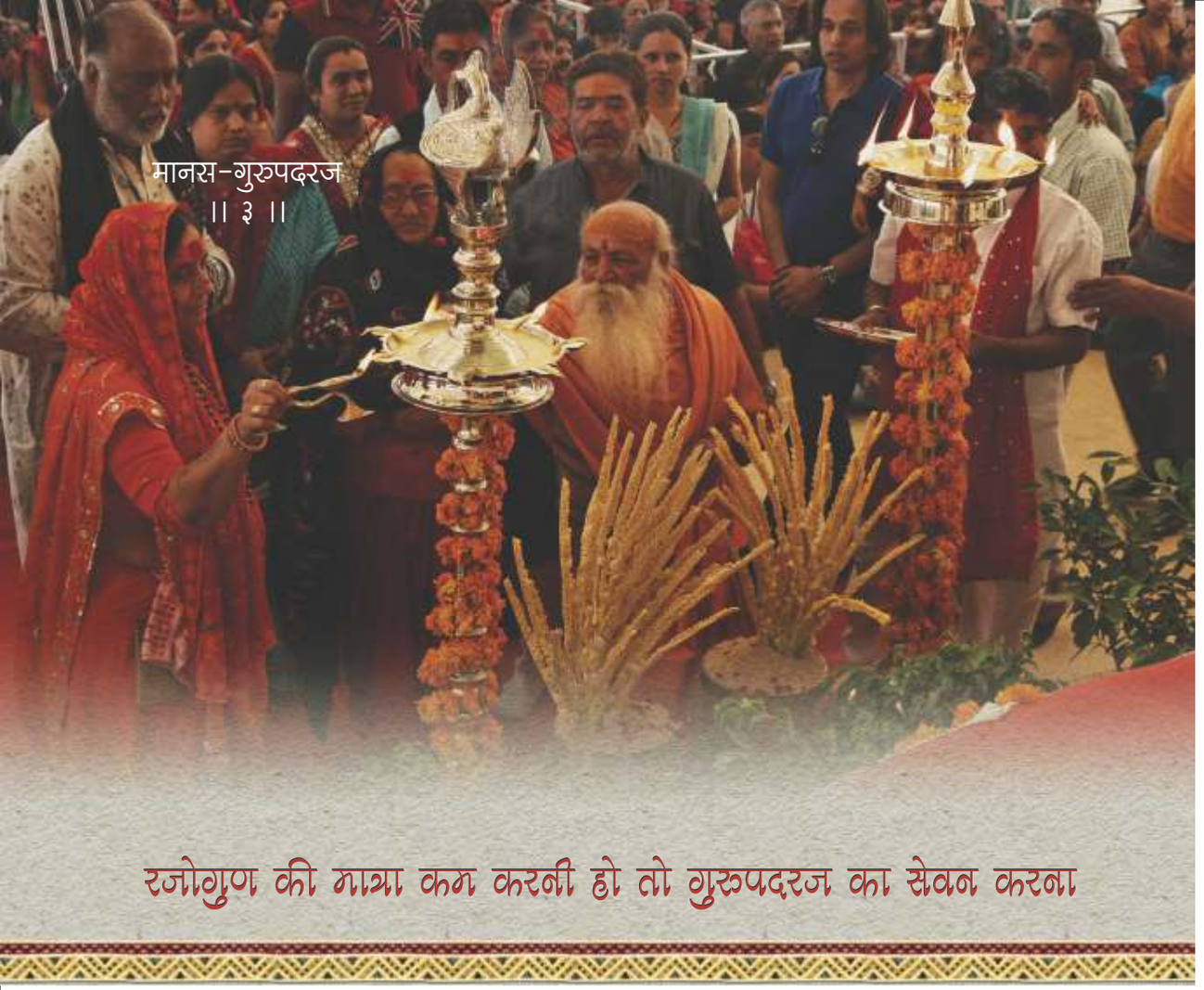

रजोगुण की मात्रा कम करनी हो तो गुरुपदरज का सेवन करना

'मानस-गुरुपदरज', कल मैंने कहा कि गुरु के समग्र पद-वाक्य प्रमाण का सूक्ष्मतम रज जैसा छोटा-सा सूत्र ये गुरुपदरज है। केवल चरणधूली ये तो है ही। मैं चरणधूली का निषेध नहीं कर पाता। उसकी मेरे मन में महिमा है। लेकिन उसमें व्यक्तिपूजा का डर भी है। ये खतरा हमें खा न जाय इसलिए सावधानी से निवेदन करता हूं।

रमण महर्षि का समग्र उपदेश, उसका सार मात्र; रमण महर्षि जैसे एक बुद्धपुरुष की पदरज क्या है? कोऽहम्? रमण को जिन्होंने पढ़ा है, जिन्होंने समझने की कोशिश की वो सब जानते हैं कि पूरा उपदेश का ये सार है। मेरी बुद्धि से मैं उसकी पदरज की बात करूं तो रमण की पदरज है, कोऽहम्? एक ही प्रश्न उसके जीवन में रहा, 'मैं कौन हूं?' जिसकी खोज। वैसे सभी बुद्धपुरुषों की, गुरुजनों की अपनी आखिरी एक संदेशात्मक बिलकुल छोटी-सी बात, छोटा-सा एक रूप।

'रामचरित मानस' सद्गुरु है ऐसा तुलसीदासजी ने लिखा है। आप सब इससे परिचित है।

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के।
बिबुध बैद भव भीम रोग के।।

तो, जो 'रामचरित मानस'रूपी सद्गुरु हमारे पास है उसकी पदरज कौन? जो हमारा अंजन बने हमारा नयनामृत बने, जो मृदु हो, जो सुंदर हो। तो, स्वयं तुलसी ने कहा कि मेरे समग्र 'रामचरित मानस'रूपी सद्गुरु की पदरज एक छोटा-सा सूत्र है।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा।
अति पावन पुरान श्रुति सारा।।

समग्र 'रामचरित मानस' का सद्गुरुरूपी चरणरज मात्र है राम। 'रामचरित मानस' का 'उत्तरकांड' आप शुरू करे तो वहां लिखा है -

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृस तन राम बियोग।

रहा एक, ये दो शब्दों को मैं लेता था। 'उत्तरकांड' का पहला शब्द। और 'उत्तरकांड' का आखिरी शब्द है, श्लोक को छोड़ दीजिए -

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।

आखिरी शब्द 'राम' है। कथा के पास, कथा के सूत्र, कथा का तत्त्वज्ञान, कथा के वर्णार्थ, अक्षरार्थ-शब्दार्थ जितने-जितने शब्द लगाओं ये सबको कहते-कहते शेष बचा राम।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा।

राम ये 'रामचरित मानस'रूपी सद्गुरु की चरणरज है।

मेरा एक निवेदन रहा है कि हमारे जीवन में जो रजोगुण है, उस रजोगुण का बड़ी सरलता से नाश करना है तो किसी की रज की नितांत आवश्यकता है। रज के बिना रजोगुण समाप्त नहीं होता। और हम सब ज्यादातर रजोगुणी जीव है, इतनी मात्रा में हम सत्त्वगुणी नहीं है। विशेष महानुभावों का अपवाद हो सकता है। परम विशेष तो त्रिगुणातीत होते हैं। लेकिन जहां तक हमारी बात है, ज्यादा मात्रा में तमोगुणी लोग है। कोई-कोई सत्वगुणी होते हैं, लेकिन बीच का जो मध्यमवर्ग है वो ज्यादातर रजोगुणी होते हैं। हम सब उसमें है। वैसे शास्त्रों में रजोगुण के नाश की तो बहुत विधायें बताई है, लेकिन ये सब ज्ञानी लोग के लिए सरल होगी। हम जैसे संसारी समाज के सामान्य जीव के लिए जरा मुश्किल है। शरणागत को चाहिए अपने रजोगुण की मात्रा यदि कम करनी है तो किसी के रज की आवश्यकता है। रजोगुण मिटाये सो गुरुपदरज। चाहे उसकी तसवीर हो। तसवीर मिटाती है तो तसवीर गुरुपदरज है। चाहे पादुका हो। हमारे रजोगुण की मात्रा दिन-बदिन कम हो जाय ये गुरुपदरज है। गुरु के हाथ से दी गई कोई माला, कोई निशानी इससे हमारा रजोगुण कम होता जाय, मेरी दृष्टि में गुरुपदरज है। लेकिन परखना बाप, कि गुमनाम है कौन? उसको कैसे परखे? ये गुरु है, श्रीगुरु है, कुलगुरु है, सद्गुरु है, त्रिभुवन गुरु है कि जगद्गुरु है, जो 'रामचरित मानस' का गुरु है। कभी गुरु को वश करने की कोशिश मत करना। गुरु के वश हो जाव, गुरु अपनेआप तुम्हारे वश हो जाएगा। जिसने भी गुरु को वश करने की कोशिश की है, समयांतर फेईल हुए हैं। मेरे न कोई शिष्य है, न मैं किसी का गुरु हूं। मेरे सब श्रोता है। हमारा और आपका रिश्ता श्रोता-वक्ता का है।

'महाभारत' में एक प्रसंग है। सत्यभामा द्रौपदी को मिलने गई। सत्यभामा द्रौपदी से पूछती है कि पांच-पांच पति होते हुए हम एक पति को वश नहीं कर सकते और आप पांच पति को कैसे वश करके अपना बना सकती है? कुछ किमिया बता। ये खास माताओं और

आश्रित शिष्यों के संबंध में लिए जा रहा हूं। मैं त्रिभुवनदास दादा का शिष्य हूं, पौता हूं। इस नाते मैंने इनमें से बहुत विधाओं का पालन किया है। आप भी अपने बुद्धपुरुष की ओर, सद्गुरु की ओर, जो गुरु का स्मरण 'मानस' ने दिया है, उनकी ओर उसमें देखे तो आपका भी दायित्व हो जाएगा कि आप इनमें से कितनी विधाओं को निभा सकते हैं? भारत में जैसे नारी पतिव्रता होती है, इस तरह शिष्य गुरुव्रता होना चाहिए और गुरु शिष्यव्रता होना चाहिए। 'मानस' में एक पंक्ति है -

सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।

मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै।।

सीता और राम आमने-सामने देखते नहीं, अवलोकन करे। अवलोकन से दर्जा बदल जाता है दर्शन का। कुल की पावन परंपरा का युवान भाई-बहनों, कायम जतन करना। अपने कुल की पावन और प्रवाही परंपरा का जतन करना ये हमारा दायित्व है, हमारे सुख का मार्ग है, छोड़ना मत। लेकिन कुल की पावन परंपरा को मूलपुरुष बताये उनके मुताबिक करना। वाया-वाया नहीं!

गांधीजी कहते थे मैं आज जो कहूं उसी बात को मानना। पहले कथा का-सर्जक का बोल क्या है उसको पढ़ो। अर्थ निकालनेवाले तभी फायदाकारक रहते हैं। पहले मूल पकड़ा जाय। मूल परंपरा का पावन प्रवाह क्या है, ये मूलपुरुष से समझना, बीचवालों से नहीं। मैं तुलसी का एक अर्थ करूंगा, कोई दूसरा ये अर्थ करेगा। वो ठीक ही होगा मेरे लिए, लेकिन दूसरे के लिए ठीक ना भी हो! गांधीजी ने कहा वो पकड़े। उसकी विचारधारा को समझानेवाले भी अपने ढंग से अर्थघटन करते हैं। मैं भी आपसे रिक्वेस्ट करूं कि पहले तुलसी क्या कहते हैं ये पढ़ लो, फिर मुझे सुनो।

तीसरी बात, कुल का मूलपुरुष प्रेम से समझाये, वो दबा के समझाये वो नहीं। मैं अर्थवाद नहीं कर रहा हूं, मेरे गुरु ने जो मुझे दिया है वो बात आ जाती है। वो आती है तब कह देता है। मूल पावन प्रवाही परंपरा हो, मूलपुरुष से सुननी हो वो प्रेम से कहे तब फिर अगल-बगल की कोई सोच किये बिना श्रद्धा से करना। प्रमाण 'रामचरित मानस' -

कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।

रघुवंश में विवाह की रीत क्या है वो कहने के लिए स्वयं सूर्य आया। और कहता है अपने कुल में ऐसा हो। और फिर सब ने सादर कियो।

'द्रौपदी, तू पांच-पांच पति को कैसे वश कर सकती हो? किमिया दिखा।' द्रौपदी ने सत्यभामा से कहा, 'तुम्हारा आरंभ ही गलत है। पति को वश करने का विचार ही छोड़ दे, पति के वश हो जा।' जो पति के वश होती है वो पति को वश कर ही लेती है, वैसे जो गुरु के वश हो जाता है, वो गुरु को वश कर ही लेता है। अपने गुरु के चरणों में निष्ठा हो तो इन सूत्रों का ध्यान रखना। इन सभी बातों को मेरी व्यासपीठ से वितरित की गई गुरुपदरज समझना। बटोरकर जाना। ये रजका तिलक करोगे तो विश्व के समस्त गुणों के मालिक होओगे।

द्रौपदी ने उस समय पंद्रह बातें सूत्र के रूप में सत्यभामा को बताई है। गुरुव्रता शिष्य को भी ये पंद्रह बातों के सूत्र का पालन करना चाहिए। समस्त रजोगुण से मुक्त होना है तो किसी श्रेष्ठ की रज से समापन होता है। 'पहला सूत्र है सत्यभामा, अपने पति की सेवा वफ़ादारी से करना।' मैं और आप अपने गुरु की सेवा पूर्ण वफ़ादारी से करें। गुरु की सेवा वफ़ादारी से करना। पूजा की जरूरत नहीं है, सेवा की जरूरत है। सबसे बड़ी सेवा 'रामचरित मानस' में दिखाई है -

अग्या सम न सुसाहिब सेवा।

सो प्रसादु जन पावै देवा।।

अपने बुद्धपुरुष की आज्ञा का अनुसरण करने जैसी कोई गुरु की बड़ी सेवा नहीं है। तुलसी कहते हैं, ये हुकम नहीं है, प्रसाद है। ऐसा प्रसाद कब मिले? वो हम तो ही पा सकते हैं, जो उनकी करुणा हो।

दूसरा सूत्र, 'सत्यभामा, पति का विरोध करते हो ऐसे लोगों को घर में बुलाना मत।' इसका अर्थ तुम जिनके आश्रित हो उस गुरु का कोई विरोध करते हो उसकी कम्पनी मत रखनी। आजके समय के लिए यह वास्तविक सूत्र हैं। व्यासपीठ हम सबकी गुरु है। 'रामचरित मानस' गुरु है।

तीसरा सूत्र, 'पति क्या करता है, पति किसको मिले, किसके साथ पति ने बात-चीत की, ऐसे रहस्यों को जानने की कोशिश मत करना।' कितने वास्तविक सूत्र दिए है! हमारा बुद्धपुरुष किसको क्या कहता है, किसने क्या सिद्धांत दिया, किसने क्या सूत्र दिया, किसको क्या ग्रंथ पकड़ाया? उसका भाष्य करने में समय बरबाद न करना। तुझे जो पकड़ाया हो उसे पकड़ रखना। यह अद्भुत गुरुपदरज है। 'सत्यभामा, घर में ऊंची आवाज़ से मत बोलना।' गुरुव्रता शिष्य को चाहिए, गुरु के पास बैठकर ऊंची आवाज़ से बात न करना। परम को पाना हो तो रंक होकर रहना।

मुझे एक बार श्रीगुरु की व्याख्या करनी है। श्रीगुरु यानी कौन? श्री मानी शक्ति, श्री मानी लक्ष्मी, श्री मानी सीता। श्रीगुरु कौन? माँ जानकी गुरु। 'रामायण' की एक गुरु माँ जानकी है। ब्रह्म का ब्रह्मपना और जीव का जीवपना बीच में खड़ी रहकर वो साधक को समझाये वो श्रीगुरु माँ जानकी। वनवास दौरान ग्राम्य महिलायें मिलती है रास्ते में तब स्त्रियां पूछती हैं कि ये दो लोग आपके कौन है? उस समय सीता गुरुपदस्वभाव से बोलती है। आंख के संकेत से कहती है, 'यह वो है।' ब्रह्म को इस तरह संकेत से समझाये उनका नाम श्रीगुरु।

द्रौपदी कहती है, 'सत्यभामा, पति को प्रसन्न रखना हो तो उनके परिवार के वडीलों को बहुत आदर देना।' जो बुद्धपुरुष की शरण हमनें स्वीकार की हो उनके आदरणीय पात्रों का अपमान मत करना। उनका आदर

रखना। 'सत्यभामा, पति को भोजन कराने के बाद भोजन करना।' गुरु आश्रित की परंपरा में स्वाभाविक होता है कि जिसके प्रति हमारी श्रद्धा होती है उसको पहले भोजन कराये। श्रेष्ठ को हम पहले भोजन कराते हैं। यद्यपि ये उनकी श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं है, ये हमारी उदारता का प्रमाण है। हमारे औदार्य, हमारे शील का परिचय है।

तो, मेरा कहना यह है कि गुरुपदरज का मतलब है, हमारे रजोगुण की मात्रा कम करनी हो तो किसी गुरुपदरज का सेवन करना। गुरुपदरज का जिसने अंजन किया है उसकी दृष्टि में रजोगुण कम होगा। सत्व, रज और तमस उसकी ओफिस हृदय है। ये विश्राम बेडरूम साधक की आंख में करते हैं। हमारे पास यदि दृष्टि की परख हो तो आंखों से पता लग जाता है कि आदमी कैसा है? रजोगुणी, तमोगुणी या सत्त्वगुणी।

कुछ ऐसी वरदानी आंखें होती है कि त्रिगुणातीत होती है। बिलकुल निर्गुण। कोई महावीर, जिसस, बुद्ध, कोई बुद्धपुरुष, कोई महापुरुष उसके दर्शन से धीरे-धीरे हमें महसूस होगा, उनके सूत्रों की याद आयेगी, उनके सूत्र का साररस हो, रज का आखिरी अणु हमें याद आयेगा और धीरे-धीरे हमें लगेगा कि हमारा रजोगुण कम होता है। ये क्रमशः होता है। बचपना धीरे-धीरे विदा लेता है। साधना का भी यही एक मार्ग है। सादगी वैभव बन जाती है। सहजता वैभव बन जाता है। रजोगुण छोड़ने के लिए भी रजोगुण से पास होना पड़ता है। आनंद करो, नृत्य करो, सब करो, लेकिन किसी विशेष गुण ये लुब्ध न हो जाय। जो आदमी एक बार बहुत जलेबी खा लेता है, फिर धीरे-धीरे जलेबी उसको ठीक नहीं लगती। पहले उसको वहां से गुजरने दो। रजोगुण यदि ठीक चीज़ नहीं है तो भी वहीं से गुज़रना पड़ेगा। रजोगुण छुटेगा उसका प्रमाण फिर हमें शांति की अपेक्षा बढ़ेगी।

मधुसूदन सरस्वतीचंद्र आचार्य का सूत्र है, जब कोई काम न हो और निंद न आती हो, सब कर लिया, फिर समय बचे तो उसमें हरि भजे। आप जिस बातों में अपना समय बिताना चाहते हो, बिताओ अवश्य। बच्चों के साथ, मित्रों के साथ, परिवार के साथ, ओफिस में, दफ्तर में, खेत में, हर जगह; कोई नाटक देख आओ, चलचित्र देखो, कोई आनंद कर लो, शायरी में जाओ, जो करना हो वो कर लो; सो लो, खा लो, वोक कर लो, लेकिन उसके बाद भी कुछ करना बाकी नहीं है और आपके पास समय रह गया, मै प्रार्थना करूं एक साधु के नाते, उस समय हरिभजन कर लो। ऐसा भाव उठेगा तब समझना मेरा रजोगुण कम हो रहा है। समय मिलते ही ठाकुर को स्मरो। तम्हारे मन में जो नाम आये। जो जिसकी इच्छा। ठाकुर रामक्रिष्न क्या कहते थे? 'माँ, माँ, माँ, माँ।' चैतन्य क्या कहते थे? 'हरि बोल, हरि बोल।' कोई परम की याद में शांत बैठो, क्योंकि पूरे दिन की थकावट ऐसा पांच मिनिट का स्मरण खत्म कर देगा।

द्रौपदी को सभा में इस रूप में पेश किया गया, विकारी दुर्योधन ने। वो पांडवों को प्रार्थना करती है। पांडवों नतमस्तक है। दादा भीष्म बैठे हैं। भीष्म का निवेदन भी यहां स्वीकार्य नहीं बनता। द्रौण, कृपाचार्य, विश्व की परमप्रज्ञा वहां बैठी थी, लेकिन एक अबळा को निर्वस्त्र करने की निकृष्ट चेष्टा! और द्रौपदी ने सबके सामने देख लिया। याद रखना, जहां-जहां हमने आशायें रखी है, कोई नहीं बचायेगा समर्थ के बिना। इस कथानक से हम और आप सीखे कि बचायेगा जो सर्व समर्थ होगा। आखिर में सर्वसमर्थ की शरण लेनी पड़ती है तो कथा सुनकर पहेले क्यों न लें?

समर्थ का आश्रय करने से हम कभी अकेले नहीं होते। कोई ऐसी सत्ता हमारे चारों ओर रहती है जो हमारे एकांत का भंग नहीं करती है। पता नहीं लगता, लेकिन कोई है। शरणागति एक बार होती है और एक की ही होती है। द्रौपदी ने आखिर में समर्थों के समर्थ को याद किया। ऐसे कोई समर्थ की गुरुपदरज, समर्थ का स्मरण। लोग कहेंगे इतनी साडियां कहां से आई? दिमाग मत लगाओ। जलन मातरी का शे'र है -

श्रद्धानो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?
कुर्रान मां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

परम श्रद्धा से लोग वेद को शिर पर लेते हैं। मेरा बहुत प्यारा उर्दू का शे'र -

बहुत अज़ीब है ये बंदीशें मुहब्बत की फ़राज़,
ना उसने कैद में रखा, ना हम फ़रार हुए।

एक ऐसी प्रीत जिसमें हमें बंधन भी न लगे और हम उससे भागकर कहीं जा भी न पाये। एक शे'र ओर -

खुदा हाफ़िज़ कहकर जब वो चला जाता है।
तो आंखें तरसती रहती है, दिल मजबूर होता है।

किसी समर्थ का आश्रय करना। द्रौपदी ने किया और लज्जा रह गई। ईश्वर समर्थ है, ईश्वर से भी समर्थ ईश्वर का नाम है। कलियुग में हम यज्ञ, पूजा-पाठ कर सकेंगे? इसलिए तुलसीजी ने उपाय बताया। केवल नामआश्रय करे। नाम में सभी साधना पूरी हो जाय।

तुलसीजी ने वंदना-प्रकरण में कथा के क्रम में रामनाम महाराज की वंदना की है। बाप, प्रभु के नाम की महिमा। कोई भी नाम। जो नाम अच्छा लगे। भगवान राम का नाम शिव ने महामंत्र समझकर चौबीस घंटों जपना शुरू किया। गणपति ने नाम का आश्रय किया और पृथ्वी पर नाम लिखकर परिक्रमा की तो जगत में पूज्य हो गये! वाल्मीकिजी ऊलटा नाम जपे 'मरा', शुद्ध हो गये! पार्वती को शिव ने कहा कि, ''देवी, 'विष्णु सहस्रनाम' अद्‌भुत है। लेकिन हजार बार परमात्मा का नाम लेने का समय न मिले तो एक बार हरिनाम बोलो।'' राम बोलो, क्रिष्न बोलो, जो बोलना है बोलो। ये हजार नाम बराबर है। योग करो, ध्यान करो, यज्ञ करो, पूजा-पाठ करो, जो भी करो और कुछ न हो सके तो हरिनाम का आश्रय करो।

हम सबने ईश्वर को ओलरेडी प्राप्त कर लिया है, पहचान करनी बाकी है। प्राप्ति की जरूरत नहीं है, पहचान बाकी है। पहचान करने के लिए सत्संग है, पहचान करने के लिए हरिनाम है। परमात्मा का नाम लो, ब्रह्म समझ में आ जाय। नाम से बड़ा कोई नहीं। तुलसीदासजी लिखते हैं -

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

> हमारे जीवन में जो रजोगुण है, उस रजोगुण का बड़ी सरलता से नाश करना है तो किसी की रज की नितांत आवश्यकता है। रज के बिना रजोगुण समाप्त नहीं होता। और हम सब ज्यादातर रजोगुणी जीव हैं। रजोगुण मिटाये सो गुरुपदरज। चाहे उसकी तसवीर हो, चाहे पादुका हो। हमारे रजोगुण की मात्रा दिन-बदिन कम हो जाय वे गुरुपदरज है। गुरु के हाथ से दी गई कोई माला, कोई निशानी, इससे हमारा रजोगुण कम होता जाय, मेरी दृष्टि में गुरुपदरज है।

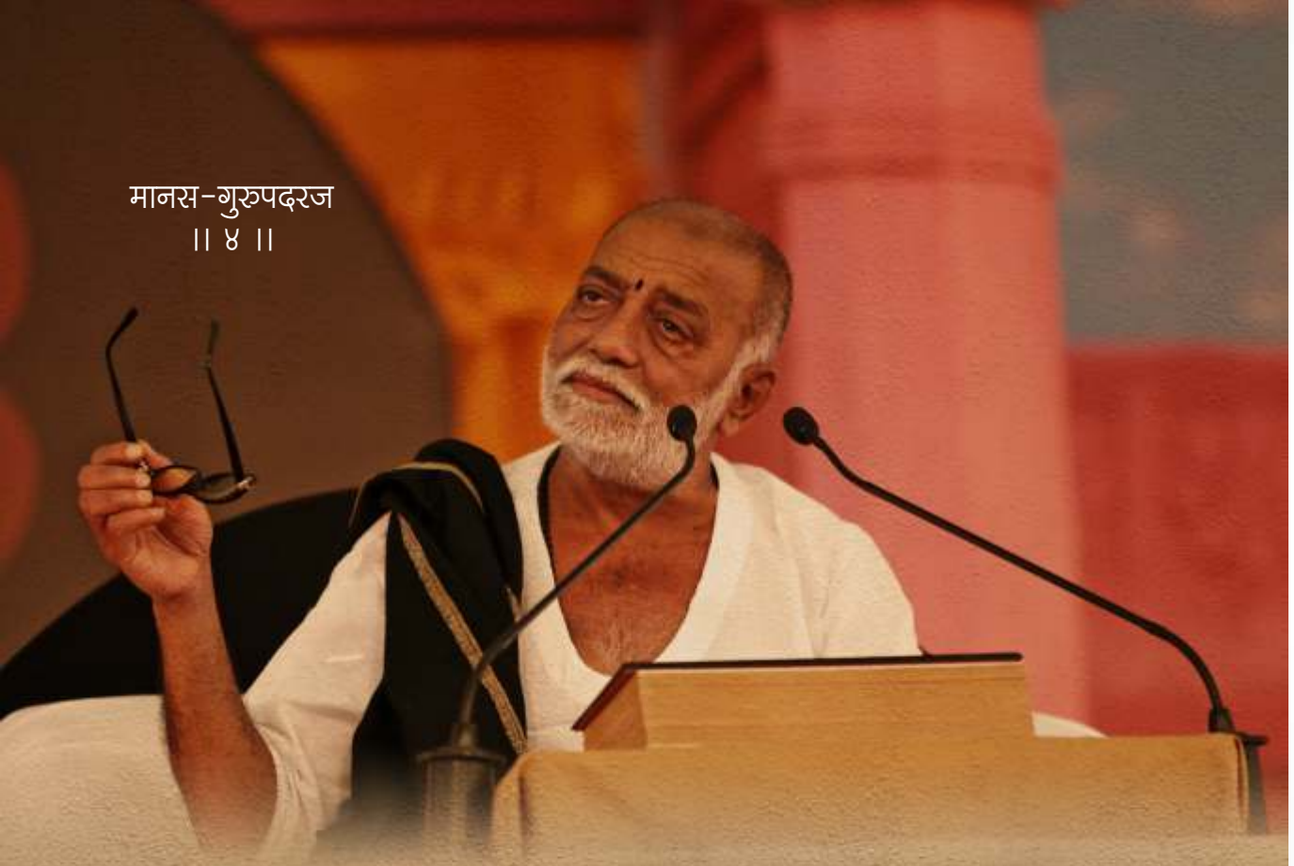

मानस-गुरुपदरज
।। ४ ।।

गुरुपद एक ओर होते हैं, गुरुपदरज चारों ओर घूमती है

'मानस-गुरुपदरज' जिसकी प्रधान रूप में हम इस कथा में वंदना कर रहे हैं। पहले हम साथ में समझने की कोशिश करें कि गुरुपद किसको कहे? एक तो यदि गुरु उपस्थित है तो उसके चरण गुरुपद है। दूसरी बात, गुरु यदि वर्तमान नहीं है, तो गुरु की पादुका गुरुपद है। तीसरा गुरुपद है, गुरु के वाक्य वचन प्रमाण। चौथा, हमारे किसी बुद्धपुरुष ने जिस स्थान में रहकर साधना की हो उस स्थान को भी अध्यात्मजगत गुरुपद कहता है। जैसे कोई जन्मस्थान हो, जीवनस्थान हो। पांचवां गुरुपद है कि जन्म कहीं हुआ है, जीवन भी वहां बिताया है, फिर भी बीच-बीच में कभी कोई विशिष्ट स्थान में जाकर उसने विशेष साधना की हो कि कभी कोई हिमालय गया, कभी कोई गिरनार गया, कभी कोई नैमिष्य गया; कभी कोई एक गुहा में बैठ गया या तो कोई किसी के घर में, आश्रम में, कमरे में चूपचाप बैठ गया उसको भी हमारा आध्यात्मिक जगत गुरुपद मानता है। एक शे'र है बाप -

घडी भर के लिए बैठे थे तुम जिस पेड़ के नीचे,
सुना है आज तक उस पेड़ का साया महकता है।

चाहे वो बोधीवृक्ष हो, चाहे वो कबीरवड हो, चाहे वो टागोर का बनियन ट्री हो, चाहे वो तीरथराज प्रयाग का अक्षयवट हो, चाहे वो दूधरेज का वडला हो, चाहे कागभुशुंडि ने जहां साधना की वो वटवृक्ष हो, चाहे कैलासस्थित वेदविदित वटवृक्ष हो। दीक्षित स्थान सचेत होते हैं। ये गुरुपद है, जैसे कि पादुका, जैसे कि जन्मस्थान ये गुरुपद है, लेकिन मेरी दृष्टि यहां गुरुपदरज पर केन्द्रित है प्रधानरूप में।

ये सब गुरुपदों की रज क्या है? गुरु जहां प्रकट हुआ हो उसकी रज मानी गई है। जन्म के समय जो योग हो; कोई बुद्धपुरुष का जन्म होता है; चाहे बुद्ध का हो, महावीर का हो, जगद्गुरु शंकर का हो, उस समय के नक्षत्र का मंडल जैसे कि 'रामचरित मानस' में जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि, उसी समय का जो योग होता है। ये विशेष काल होता है। साहब, ऐसी चेतना माँ के गर्भ में आती है तब भी कुछ विशेष क्षण होती है और चेतना आती भी है तो रज के थ्रू आती है। विशेष कहूं तो चेतना का अवतरण भी तो किसी के माध्यम से होता है।

तो, गुरु जहां प्रकट हुआ है उस गुरुपद की रज का मतलब है उस समय का वायुमंडल, उस समय का नक्षत्र मंडल, उस समय के समाज में घटी घटनाओं का संकलन। हमारे यहां स्पष्ट है कि कोई साधुपुरुष जनम लेता है तो पूरे संसार में एक पता न लगे ऐसी प्रसन्नता फैल जाती है। और कोई दुर्बुद्धि प्रकटता है तो उल्कापात! कभी भूकंप, कभी सुनामी! वैज्ञानिक कारण कई होते हैं, लेकिन याद रखना, इसके पीछे इनके आगमन का संकेत है। कहा जाता है कि असुर जब प्रकट होते हैं तो दिशाओं में आग लगती है। प्रकृति का क्रम टूटने लगता है। और कोई परम चेतना का अवतरण होता है तब अस्तित्व फूलों की बर्षा करता है। हमारी तकलीफ़ क्या है कि जब बुद्धपुरुष प्रकट होता है तब के वायुमंडल का कोई निरीक्षण नहीं करता, क्योंकि पता ही नहीं कि कौन आनेवाला है? ये तो बाद में पता चलता है! कभी-कभी तो वो पूरा जीवन बीताकर चला जाय, शताब्दियां के बाद पता चला है!

समाज बहुत चुक गया है! चुकता रहा है! शायद विषम मायावश जीव चुकता रहेगा! चेतनाओं की पदरज के बारे में हमने बहुत धोखे खाये! उपर से दिखता अमानुषी मानवी, उपर से दिखता उग्र, इसका उपर का कार्यकलाप शायद तुरंत निर्णय करने के लिए हमें बाध्य करे कि ये आदमी ऐसा है, हो सकता है, लेकिन अस्तित्व के हस्ताक्षर कुछ ओर कहता है! जिसने उसको सर्टिफाय किया ये बातें कुछ ओर है!

बाप, तो गुरु की प्राकट्यस्थलि ये गुरुपद है। उसी समय का वातावरण एक पूरा नभमंडल यही है गुरुपदरज। भगतबापुए गायुं छे -

सोनलमा आभकपाळी, भजुं तने भेडियावाळी,
उगमणा ओरडावाळी, भजुं तने भेडियावाळी.

गुरुपद एक ओर होते हैं, गुरुपदरज चारों ओर घूमती है। 'मानस' की एक पंक्ति है बाप,

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा।
कीचहिं मिलइ नीच जल संगा।।

पानी का संग रज करे तो कीचड़ में मिल जाय और कोई पवनपुत्र का संग करे तो गगन चढ़े। जब तक हम इस वायुमंडल में नहीं आते तब तक लाख उस स्थान में रहते हैं फिर भी महसूस कम होता है।

तो, गुरु की प्राकट्यस्थलि गुरुपद है। प्रकट समय का वायुमंडल रजोमंडल है। साधक के चित्त में गुरु की ही कृपा से नभोमंडल का आभास होता है तब अंत:करण के आकाश को शुद्ध होने में देर नहीं लगती।

दूसरा, गुरुपद उसको कहते हैं गुरु की पादुका। पादुका की रज है पादुका की आवाज़। पादुका बोले। पादुका लकड़ें की हो और चलो तब पादुका बोले। ये उनके बोल है। पादुकानिष्ठ साधकों के ऐसे अनुभव होते हैं कि पादुका बोलती है। पादुका की रज है उसकी आवाज़, उसकी ध्वनि। शुद्धिकरण की प्रक्रिया है पादुका। समग्र राज्य-संचालन चौदह साल तक केवल पादुका के मार्गदर्शन में हुआ है। और सा'ब, जब तक पादुका ने शासन किया, पादुका की पदरज ने अवध प्रदेश के सार्वभौम भूगोल को सुरक्षित रखी। पद से पादुका की महिमा विशेष है। और पादुका से इसकी रज की महिमा है। क्रमश: ये विशेषता। पादुका बोले। उसकी भाषा बिलग होगी, हम न समझ पाये। या तो मौनवाणी होगी।

बाप, पद से पादुका की महिमा। पादुका से पदरज की महिमा। तुलसी लिखते हैं, 'नित पूजत प्रभु पाँवरी ...' पादुका उसको आदेश देती थी। अयोध्या के चौदह साल तक प्रजा के प्राण के दो रक्षक थे पादुका। पादुका का बोल सुनाई दे वो उसकी रज का अनुभव है।

गुरुजनों ने, किसी विशिष्ट चेतनाओं ने कहीं स्थान में जाकर विशेष साधना की हो वो गुरुपद है। और उसी स्थान में हम जाते हैं तब हमें कुछ विशेष महसूसी होने लगती है। वो अनुभूतियां कुछ समय तक साथ में चलेगी। साधु की समाधि पर धूप होता था। उसका करीब मुझे भी अनुभव है। मैं अंधश्रद्धावाला आदमी नहीं हूं। मैं चमत्कार को जरा भी सोचता नहीं। परवीन शाकिर की गज़ल -

तेरी खुश्बू का पता करती है,
मुझ पे एहसान हवा करती है।

मुझको इस राह पे चलना ही नहीं,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।

तो, 'रामचरित मानस' में गुरु की छ: विधा है - गुरु, श्री गुरु, कुलगुरु, सद्गुरु, त्रिभुवनगुरु, जगद्गुरु। अब ये छहों की रज तलाश करो, खोजो। तुलसी के दिमाग में गुरु कौन है? तुलसी के मन में गुरु ओर कोई नहीं है, नररूप हरि ये गुरु है। तुलसी जिस गुरु की चर्चा करते हैं, जहां तक भनक रही है 'मानस' के शब्दों से तो वहां कहना चाहिए कि उनके गुरु नरहरि है -

बंदउं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।

गुरु का नाम स्पष्ट रूप में शिष्य नहीं लेता है मर्यादा के कारण, इसलिए ये यहां नर और हरि के बीच में 'रूप' डाल के तुलसी ने अपने नरहरि महाराज की वंदना की। नररूप हरि। और गुरु के चरण की रज है, शास्त्रदान, विद्यादान, कलादान ये है उनकी रज। बार-बार देगा। लगे कि अब बराबर है फिर बंद करेगा। तुलसी की दृष्टि में गुरु, उनके गुरु है नरहरि महाराज और 'रामचरित मानस'रूपी एक महान सद्ग्रंथ उसने दिया ये हो गई रज, रजमात्र। 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।' गंगा का एक बुंद पीओ, बेड़ा पार! 'भगवद्गीता' थोड़ी वांचो, उद्धार हो जाय! गुरु जितना पचे इतना ही देता है। कंजूस नहीं, उदार है लेकिन देगा इतना, जितना तेरे दामन में जगह है।

अब श्री गुरु। श्री गुरु माँ जानकी है, जगदम्बा है, पराम्बा है, हम सबकी श्री गुरु है। माँ ही श्री गुरु है। सीता के लिए, जगदंबा के लिए 'श्री' शब्द गोस्वामीजी ने कई बार यूझ किया है। श्री गुरु माँ जानकी है और इस गुरु की रज, एक छोटी-सी कृपा प्रज्ञा की शुद्धि करती है, प्रज्ञा का जागरण करती है। प्रमाण -

जनक सुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।

ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ।।

शक्ति स्वरूपा गुरु, मातृस्वरूपा गुरु, वो रजमात्र कृपा करे और निर्मल बुद्धि का दान करे। ये श्री गुरु की देन है।

अब तीसरा, कुलगुरु। जैसे 'रामचरित मानस' में अवधपुर का कुलगुरु है वशिष्ठजी। जनकपुर का कुलगुरु है शतानंदजी महाराज। कुलगुरु हमें थोड़ा-सा आचारधर्म बता देता है। कुलगुरु का कर्तव्य अपने आश्रित को जितना वो पचा पाये इतना आचार दिखाये। विचारवान और आचारवान कुलगुरु आचारों को प्रस्थापित कर सके और उनकी रजमात्र से आचार प्रस्थापित हो सके।

चौथा, सद्गुरु। सद्गुरु की रज क्या काम करे? सद्गुरु की रजमात्र कृपा से हमारे अंदर रहे संशय और भ्रम का समापन हो जाता है। थोड़ी-सी कृपा हो जाय। संदेह और भ्रम का नाश करे। जिसको ज्यादा संशय, भ्रम होता हो वो खोजे सद्गुरु के चरण की रज। गुरु शास्त्र दे, श्री गुरु प्रज्ञा दे, कुलगुरु आचार दे और सद्गुरु संशय समुदाय का नाश करे। और 'रामचरित मानस' में कई सद्गुरु है। भरत को मैं सद्गुरु मानता हूं। हनुमानजी तो सद्गुरु है, है, है। और बाबा कागभुशुंडि सद्गुरु। ऐसा सद्गुरु कि गरुड गया संदेह लेकर और अभी तो आश्रम में पैर रखा और बोला -

देखी परम पावन तव आश्रम।
गयउ मोह संसय नाना भ्रम।

हे सद्गुरु, तेरे आश्रम का दर्शन किया और संदेह, भ्रम सब खत्म हो गया! और आखिर में दो बार वो कहता है -

गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक।।

सद्गुरु की रजमात्र कृपा से संदेह और भ्रम का निवारण होता है।

त्रिभुवनगुरु 'रामचरित मानस' में शिव है, महादेव है। प्रमाण के रूप में -

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।
आन जीव पाँवर का जाना।।

शिव त्रिभुवन गुरु है। त्रिभुवन गुरु की रजमात्र कृपा कल्याण की वर्षा करती है, कल्याण से हमें नहला देती है। शिव शिव है। महादेव अद्भुत तत्त्व है!

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।

करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

●

प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।

●

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।

तो, शिव त्रिभुवनगुरु है 'मानस' का, विश्व का और वो कल्याण बांटता है। भक्ति का भंडारी है। ज्ञानदाता है, जोगदाता है। जिसका नाम आश्रित का कल्पतरु है। और जगद्गुरु।

जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं।

जगद्गुरु है 'रामचरित मानस' में राम। अत्रि महोदय के वचन है। राम अपनी आंख की पलक का ध्यान रखनेवाला और रक्षण करनेवाला तत्त्व है। अनेक रूपे राम 'रामचरित मानस'में विस्तरे है। तुलसी ने राम को किरात कहा है, राम खगराज है। भीलों के भगवान कौन? राम। राम ही राम। सब राममय है। तो बाप, जगद्गुरु राम की रजमात्र कृपा हो तो आपके पारिवारिक जगत में राम की स्थापना हो सके। राम की कृपा हो तो विश्राम, आराम, विराम, अभिराम। तो ये छ गुरु।

श्रद्धा और विश्वास हमारे मंडप में साथ-साथ नहीं बैठे तब तक रामतत्त्व का प्राकट्य असंभव है। रामकथा में हम जानते हैं कि कथा राम की है, लेकिन शुरूआत शिवकथा से होती है। अद्भुत सेतुबंध है। शिवजी कुंभज ऋषि के आश्रम से कथा सुनकर लौटे। राम की ललित नरलीला देखकर वह ब्रह्म है या नहीं ऐसा सती को संशय हुआ है। सती परीक्षा करने गई। निष्फल हुई। महादेव भवन बाहर निजस्वरूप का अनुसंधान करते हुए समाधि में बैठ गए। सत्ताशी हजार साल की समाधि बाद शिव जागे और 'राम' बोले। सती शिवजी सम्मुख गई। शिवजी ने आदर दिया। दक्षयज्ञ की बात आई। सती मानी नहीं। दक्षयज्ञ में गई, महादेव का अपमान सहा न गया। सती ने देहत्याग किया। उनका दूसरा जन्म पार्वती के रूप में हिमालय के वहां हुआ। एक दिन नारदजी पधारे। हस्तरेखा देखकर नारदजी ने कहा, 'हिमालय, आपकी पुत्री महान है। उनके उमा, अंबिका, भवानी आदि अनेक नाम है।' तप करने की सीख देकर नारदजी गये है। पार्वतीजी ने बहुत तप किया। आकाशवाणी हुई, 'हे गिरिराजपुत्री, आपकी तपस्या सफल हुई है, घर जाओ, आपको शिव मिलेंगे।'

इधर भगवान प्रकट हुए। और महादेव को कहा, आज मैं आपके पास मांगने आया हूं। नारायण ने कहा कि, 'हिमालय महाराज जब निमंत्रण दे तब हठ छोड़कर आप पार्वती का स्वीकार करे। आप विवाह

'रामचरित मानस' में गुरु की छः विधा है - गुरु, श्री गुरु, कुलगुरु, सद्गुरु, त्रिभुवनगुरु, जगद्गुरु। तुलसी के दिमाग में गुरु कौन है? नररूप हरि ये गुरु है। श्री गुरु माँ जानकी है, जगदम्बा है, पराम्बा है। अब तीसरा, कुलगुरु। जैसे 'रामचरित मानस' में अवधपुर का कुलगुरु है वशिष्ठजी; जनकपुर का कुलगुरु है शतानंदजी महाराज। चौथा, सद्गुरु। 'रामचरित मानस' में कई सद्गुरु है। भरत को मैं सद्गुरु मानता हूं। हनुमानजी तो सद्गुरु है, है, है। और बाबा कागभुशुंडि सद्गुरु। शिव त्रिभुवन गुरु है। 'रामचरित मानस' में जगद्गुरु है राम। जगद्गुरु राम की रजमात्र कृपा हो तो आपके पारिवारिक जगत में राम की स्थापना हो सके।

करो।' महादेव ने कहा, 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।' व्रतों का दंभ मत करना। निर्दंभता बड़ा व्रत है। प्रभाव पाड़ने की वृत्ति न रखनी ये बड़ा व्रत है। कभी-कभी मौन रहना ये व्रत है। कभी-कभी मुखर बनना ये व्रत है।

मुस्कुराते रहो, गुनगुनाते रहो।
जीवन संगीत है, स्वर सजाते रहो।

धर्मपुरुष के पास एक बहुत बड़ा बल वाणी का होता है। धर्मजगत को बोलना पड़े, धर्मपुरुष के पास सरस्वती का बल होता है। और जिनके पास सरस्वती का बल हो वह गंभीर न हो सके। सरस्वती के हाथ में वीणा है, पुस्तक है उसका अर्थ उन्हें गायन भी करना, वादन भी करना और शास्त्र का सतत स्वाध्याय भी करना। यह हमें धर्म सीखाता है। हम अकारण गंभीर होते हैं! हंसते रहना। जगद्गुरु शंकराचार्य ने कहा है, 'प्रसन्नचित्ते परमात्मदर्शनम्।' जीवन में तुम प्रसन्न रहोगे तो कभी परमात्मा का दर्शन होगा। और धर्म प्रसन्न रहने की मना करे तो उसका अर्थ यह हुआ कि वह ईश्वरदर्शन के सभी द्वार बंद करता है। चित्त प्रसन्न रहे। हमारा दान अलगारी कहता है -

मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं रे,
अगम अगोचर अलखधणीनी खोजमां रे'वुं रे ...

प्रसन्नचित्त परमात्मा को पाने का द्वार है। इसलिए प्रसन्न रहना। कोई श्रेष्ठ हमें कहे कि ऐसा करो, तो उस दिन व्रत टूटता नहीं, बल्कि व्रत का फल मिला, ऐसा समझना। भगवान महादेव ने कहा, 'प्रभु, आपकी आज्ञा मैं मस्तक पर धारण करता हूं, मैं विवाह करूंगा।' विवाह की तैयारी शुरू हुई है -

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा।
जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा।।
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला।
तन बिभूति पट केहरि छाला।।

शिवजी को शिंगार हुआ है। भूतों ने शिंगार किया। महादेव की बारात निकली है। नंदी पर सवार होकर शंकर भगवान आए। महाराणी मैना परिछन के लिए आई और शंकर का विकट रूप देखा! बेहोश हुई मैना महारानी गिर पड़ी! सखियां मैना को लेकर निजमंदिर में गई है। सप्तऋषि नारदजी को लेकर हिमालय निजमंदिर में आए। नारदजी मैना को कहते हैं, 'देवी, आपकी भ्रांति मिटे। आप पार्वती की माँ नहीं, लेकिन पार्वती आपकी माँ है। पूरे जगत की माँ है।' नारदजी सब समझाते हैं कि ये सदासर्वदा शिवप्रिया है। द्वार पर आपने जिनका अपमान किया वह शिवतत्त्व है।

महादेव पधारे। पाणिग्रहण विधि हुआ। हिमालय ने कन्यादान किया। पार्वती शिव को समर्पित हुई। महादेव पार्वती संग कैलास तरफ़ प्रस्थान करते हैं। शैलजा कैलास आई। भगवान कार्तिकेय का जन्म हुआ। फिर उन्होंने ताड़कासुर नामक राक्षस को निर्वाण दिया। और देवताओं को भयमुक्त किया।

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा।।
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नार कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्वदा सुखु पावहीं।।

आज की कथा को विराम।

गुरुपदरज का अपना शब्द है, स्पर्श है, रूप है, रस है

आज भगवान ईसु की नयी साल शुरू हो रही है। १-१-२०१४, पूर्णांक है। नयी साल का सूरज निकल चूका है। आज सुबह का चिंतन-प्रसाद कहकर आगे बढ़ूं। विचार और चिंतन में भेद है। विचार सबको आते हैं। कुछ-कुछ मात्रा में पशुओं को भी आते हैं। कुछ मात्रा में पक्षीओं में भी समझ है, लेकिन हम मानव ठहरे, हमारे मस्तिष्क में विचारों के तरंग निरंतर चलते रहते हैं। चिंतन एक बिलग प्रदेश है। और फिर दर्शन ये तो इससे भी एक ऊंचा मुकाम है। वेदांत की प्रक्रिया में दर्शन में भी एक प्रोब्लेम है। कोई दर्शन ऐसे होते हैं जिसमें दर्शक इन्वोल्व हो जाता है। डूब जाता है। और डूबना अच्छी बात है फिर भी कभी ये रागात्मक हो सकता है। राग आसक्ति पैदा कर सकता है कि वहीं से हटने को जी न लगे। इसलिए हमारी चिंतन की परंपरा में आखिरी मुकाम माना गया है साक्षी।

एक प्रमाणित डिस्टन्स रखकर किया गया दर्शन। बाप, हम पंचतत्त्वों से बने हैं, इसलिए इस पांचों से हमारा जोड़ है। परमात्मा ने आसमान बनाया और आसमान हमें ये सीख देता है कि मुझ में कोई दीवारें नहीं है। मैं उदार,

विशाल और अविभक्त हूं। मुझमें टुकडे-टुकडे नहीं है। मैं आपकी साथ जुड़ा हूं, आप मेरी व्यासपीठ से जुड़े हैं। नये साल के आरंभ में हम सब शिवसंकल्प करें, जितनी मात्रा में सफल कर पाये, छोड़ो हरि पर। हमारे पास अंदर भी एक आकाश है जिसको हमारी मनीषा, हमारी भारतीय प्रज्ञा कहती है चिदाकाश, हृदयाकाश। वो उदार रहे, वो विशाल रहे। सबके प्रति दिल के द्वार खुले रहे, संकीर्ण ना बने। बहुत-से द्वेष, बहुत-सी निंदा, बहुत-सी इर्ष्या, बहुत-सी जलन मिट सकती है, यदि नयी साल में इस शिवसंकल्प के पथ पर चले। अखंड, असीम-अमर्याद दिल को बनाने की हम दीक्षा ले, एक।

दूसरा, परमात्मा ने हमारे लिए धरती बनाई। पृथ्वी सबको धारण करती है, छोटे-बड़े, पुण्यात्मा-पापात्मा, सुर-असुर, देव-दानव, निम्न-श्रेष्ठ सबको धारण लिये ये धरती बैठी है। धरती धारक है। बाप, ईसु के नये साल के आरंभ में हम अपनी हैसियत के, अपनी क्षमता के अनुसार सबके धारक बने। 'रामचरित मानस' में एक पात्र है -

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।

तीसरा तत्त्व अस्तित्व का वो है जल। नदी का जल प्रवाहित रहता है, वेगवंत रहता है। उसको कहीं जाना है। उसको किसीको हरा-भरा करना है। और परम लक्ष्य को पाना है। कई कंठों की तृषा को तृप्त करना है। हम और आप सरिता की तरह बहे। जो बहता है वो बहुत मात्रा में पवित्र रहता है। हम तीव्रता से गति करे क्यों? मैं समाज को हरा-भरा करूं। रास्ते में आये सबको हरा-भरा करके मैं सागर को पाउं, मेरे अंतिम लक्ष्य को उपलब्ध होउं। 'मानस' में लिखा है -

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं।।

लक्ष्य को प्राप्त करने की यात्रा में बीच में आपको हरा-भरा करते हुए, सबके चेहरे पर प्रसन्नता बांटते हुए, सुखे कंठ को तृप्त करते हुए, जल से दीक्षा लेकर दो हजार चौदह की यात्रा शुरू करें। चौथा तत्त्व अग्नि। अनावश्यक दहन कर दे। जो अनावश्यक है उसका मात्र दमन नहीं। कभी-कभी हम विकारों का दमन करते हैं। ओशो का एक निवेदन है, दमन नहीं, दहन। जलाकर भस्म करना। हरेक विकार दमन से नहीं, दहन से किया जाय।

संसार से भागे फिरते हो,
भगवान से तुम क्या पाओगे?

जगत तो प्रभु की रचना है। उससे क्या भागना? जागना। जागने का मतलब सोना तब सुषुप्ति, जागना तब पूर्ण जागृति। कोमा में नहीं जीना। शंकराचार्य ने निद्रा को समाधि कही है। प्रेम बड़ा औदार्य रखता है, उसमें मुक्ति ही मुक्ति होती है।

'महाभारत' में एक चर्चास्पद अर्थघटन रहा है, पुरुष अर्थ का दास है, पैसों का गुलाम है। यह 'महाभारत' का भीष्मवाक्य है, द्रोण का वाक्य है, कृपाचार्य और शैल्य के मुख से बोला गया है। चारों ने कुछ परिवर्तन के साथ बोला है। भीष्म कभी पैसों का गुलाम हो सके? द्रोणाचार्य जैसा पहुंचा हुआ बादशाह, गुरु, पैसों का गुलाम हो सकता है? कृपाचार्य तो इससे भी आगे है। ये अर्थ का गुलाम नहीं हो सकता और शैल्य? लेकिन बोला गया, पुरुष अर्थ का गुलाम है।

पैसा किसीका गुलाम नहीं, पुरुष पैसों का गुलाम है। गंगा विष्णु का चरणामृत है। वो गंगा बही

उनका यह पुत्र, क्या दुर्योधन उनको खरीद सके? लेकिन वह जब कहे कि पुरुष अर्थ का दास है, तब अर्थ का ग्यारह अर्थ है। अर्थ का पहला अर्थ है, प्रार्थना, बिनती। भीष्म कहते हैं कि हम दुर्योधन की बिनती के अधीन है। हमने उनकी प्रार्थना स्वीकार की है। मतलब, एक अर्थ यह हुआ कि पुरुष किसी की बिनती का गुलाम है। दूसरा अर्थ, अर्थ यानी उद्देश। आदमी कभी-कभी अपने उद्देश के अधीन होते हैं। मेरा उद्देश रामकथा का है।

अर्थ का एक अर्थ है खोजना। जब आदमी किसी खोज में डूब जाता है आईनस्टाईन की तरह; कोई शास्त्र की खोज में, कोई विज्ञान की खोज में डूब जाता है, उसीमय बन जाता है। उसको फिर दूसरा दिखता नहीं शोध में, खोज का गुलाम बन जाता है। अर्थ का एक अर्थ है औदार्य। आदमी की उदारता मज़बूर करती है। इनमें से कितने अर्थ भीष्म, द्रौण, कृपाचार्य और शैल्य को लागु होते हैं! अर्थ का एक अर्थ है असहायता। भीष्म कहे, में अर्थ का दास हूं यानी मैं असहाय हूं। मैं जब वचन देता हूं, फिर असहाय हो जाता हूं। और इसलिए कोई प्रतिज्ञा लेने से पहले कोई गुरु को पूछना। हमारी प्रतिज्ञा कभी-कभी हमें हानिकारक सिद्ध होती है। एक शब्द का एक ही अर्थ लेते हैं तब अनर्थ पैदा होता है। अर्थ का अंतिम अर्थ है संपत्ति। संपत्ति के गुलाम हम हो सकते हैं, भीष्म नहीं हो सकते, द्रौण नहीं हो सकते, शैल्य नहीं हो सकते, कृपाचार्य कभी नहीं हो सकते। यह बड़ा नाट्यात्मक प्रसंग है।

बाप, अनावश्यक वस्तु को जलाना। हमारे जीवन में जो अनावश्यक है वो जल जाय। जब अपनी खोज करते-करते लगे कि मेरे स्वभाव में इतनी बात ठीक नहीं है, मेरे जीवन में इतनी बात ठीक नहीं है, ऐसे समय जो आवश्यक नहीं है इन चीजों का होम कर देना, उसको समाप्त कर देना ये अग्नितत्त्व से लेनेवाली सीख। और किसी के घर में दीया न जलता हो वहां जाकर अग्नितत्त्व से हम दीप जलायें, रोशनी बांटें।

आकाश से नई सीख लें, दीक्षा लें कि हम भेद नहीं करेंगे, अविभक्त जीवन जीएंगे। पृथ्वी से ये दीक्षा ले, हमारी औकात के अनुसार सबको धारण करेंगे। महाविद्यालय बनाने की हमारी औकात न हो, लेकिन कोई गरीब विद्यार्थी की फीझ के बिना चूक जाती हो उनकी शिक्षा, तो उसकी फीझ भरें। तुम दसवां हिस्सा अपनी कमाई का बिलग करो। प्रामाणिकता से दसवां भाग निकाल दो। बाप, धारक बनिए।

जल से दूसरों की तृषा बुझाने का संकल्प करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करे। अग्नितत्त्व से सीखें अनावश्यक वस्तु को जला दे। आखिरी सूत्र वायु, वायु से सीखें, सबका जीवन बनना लेकिन अपने को कभी दिखाना मत। पवन हम सबका जीवन चलाता है, लेकिन दिखता नहीं। पकड़ा नहीं जाता। असंग चलता है। अथवा वायु के तत्त्व को इस रूप में समझें कि वायु तो न पकड़ा जाय, लेकिन वायुपुत्र हनुमान को पकड़ें, उनका आश्रय करें। तुलसी लिखते हैं -

और देवता चित्त न धरई।
हनुमंत सेई सर्व सुख करई।।

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर।
जय कपीस तिहुँ लोक उजागर।।

वायुतत्त्व से हम शिवसंकल्प करें कि हमारी गति हनुमंततत्त्व के प्रति हो। हनुमानजी रामकथा में सबके प्राण बचानेवाले हैं। हमारी गति दूसरों को जीवंत रखने के लिए हो। किसी की बाधा न हो। हम मारग के

पत्थर हटानेवाले हो। हम नया जीवन देनेवाले हो। सबको नयी साल की बधाई।

'मानस-गुरुपदरज' की हम बातें, संवाद कर रहे हैं। 'रामचरित मानस' में सात पात्रों की चरणधूली की चर्चा है। और ये सातों गुरु है। श्रेष्ठों को, वरिष्ठों को सही में जो श्रेष्ठ है इन सबको हमने गुरु माना है। श्रेष्ठों को हमने सदैव पूज्य माना है। और उनकी चरण की वंदना को हमने गुरुपदरज कहा है। और रज के लिए तुलसीदासजी ने चार शब्दों का वर्णन किया है। एक तो रज, गुरुपदरज जिसकी हम चर्चा करते हैं। उसीको गोस्वामीजी पराग भी कहते हैं। 'बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।' पराग मानी रज। यद्यपि उस रज का आध्यात्मिक क्षेत्र बिलग हो जाता है। सबका अपना स्वतंत्र अर्थ है। तो, एक तो रज; दूसरा पराग; तीसरा रेणु और चौथा धूरी। गुरु के पैर से सटी मीट्टी। चार शब्द रज के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। रज, पराग, धूरी, रेणु ऐसी सात वंदना 'रामचरित मानस' में गुरुपदरज की हुई है। एक ब्रह्मा। रामजी की रज का तो भरमार है। तीसरे परशुरामजी। चौथे विश्वामित्रजी, पदरज की महिमा गाई गई। पांचवें श्री सीताजी, छठ्ठे श्री गंगाजी। और सातवां ब्राह्मणवृंद, उसके पैरों की घूरी।

और ब्रह्मा को हमने गुरु माना है। पहले नाम उनका लेते हैं 'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु।' गुरु किसी न किसी वस्तु का सर्जक है। मेरी समझ में गुरुचरणरज के हम जब आश्रित हो जाते हैं तो गुरु दो काम करता है। गुरु अपने आश्रित के मन का ज्ञाता भी है और उनके मन का निर्माता भी है। जो बुद्धपुरुष है वो अपने आश्रित के मन को जानता है। और जब हम बुद्धपुरुष के पास पूरे के पूरे ऊतर जाते हैं तो फिर लौटते हैं तब वो ही मन नहीं रहता, गुरु उस समय अपने आश्रित को एक नया मन

देता है। तो, गुरु को हमने ब्रह्मा कहा है और तुलसीदासजी गुरु को ब्रह्मा समझकर, एक निर्माता समझकर एक सर्जक समझकर कहते हैं -

बंदउँ बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी।।

ब्रह्मा की चरणरेणु की मैं वंदना करता हूं। परशुराम की चरणवंदना आई है। विश्वामित्र महाराज के चरण के रज की महिमा आई है। रामजी की तो महिमा बहुत है ही -

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।

सीता के चरणकमल की महिमा है। और गंगाजी की चरणरज। गंगा की रेणु और गुरु गंगा है, गुरु जानकी है, गुरु ब्रह्मा है, विश्वामित्र गुरु है। रामजी तो है ही और परशुराम गुरु है। उनकी पदरज का वर्णन 'मानस' में आया है। मुनिवृंद, विप्रवृंद की चरणरज की भी वंदना उपलब्ध होती है। 'दोहावली' का एक दोहा गुरुपदरज के बारे में -

राम नाम कलि कामतरु राम भगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूल जग गुरुपद पंकज रेनु।।

रामनाम कल्पवृक्ष है। कोई भी धर्म के आप हो, आप जिसकी प्रार्थना करते हो इस प्रत्येक भक्ति कामदुर्गा गाय है, कामधेनु है। निर्मल भाव से विशुद्ध अंत:करण से जो भक्ति करता है उनके लिए रामभगति सुरधेनु कामदुर्गा गाय है। भीतरी निर्दोषता, भीतरी ऋजुता से जो भजन करता है उसके लिए रामभगति सुरधेनु है। नाम कल्पतरु, भक्ति सुरधेनु। समग्र जगत में जितना मंगल विधान है, फिर मंगलभवन हो, मंगलमूरति हो, इसका जो मूल है उसकी जड़ें है ये गुरु के चरणकमल की मिट्टी है। तो, गुरुपदरज की महिमा अनेक विधाओं से तुलसीदर्शन में स्थापित है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच इन्द्रियों के विषय है। गुरुपदरज, उसका एक स्वाद होता है, रस

होता है। गुरुपदरज का एक अकल्प्य स्पर्श है। गुरुपदरज का एक अपना बोल है, शब्द है। गुरुपदरज की एक अलौकिक द्युति है। अलौकिक श्री है। अलौकिक प्रभा है, रूप है। गुरुपदरज के यदि हम समर्पित है तो चार वस्तु गुरुपदरज से इस्तेमाल करें जरूर पड़े तब। गुरुपदरज का चार प्रकार से उपयोग किया जाता है। तुलसी कहते हैं, गुरुपदरज से तिलक करने से समस्त दैवीगुणों के मालिक बन जाते हैं। गुरुपदरज को नेत्रांजन बनाया जाता है। रज अंजन बनती है। रज तिलक बनती है। रज व्यक्ति का स्वाद बन सकती है। और गुरुपदरज रोग का चूर्ण है। इसलिए तो गोस्वामीजी पूर्वपक्ष में ये सूत्र प्रदान कर देते हैं -

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भवरुज परिवारू।।

ये चूर्ण की तरह उपयोग किया जा सकता है अंधश्रद्धा और अश्रद्धा तोड़कर। केवल केवल मौलिक श्रद्धा। तो, ऐसी गुरुपदरज का विशेष आध्यात्मिक अनुभव इन साधकों को होता है, जो साधक अंधश्रद्धा और अश्रद्धा से नितांत मुक्त होता है।

भगवान शिव एक बार कैलास के सदाबहार वेदविदित वटवृक्ष के नीचे बैठे हैं। योग्य समय देखकर पार्वती शिव के पास गई। पार्वती निकट आई तो शंकर ने सन्मान किया और अपने वामभाग में बिठाया। मैं भी आपको निवेदन करूं कि गृहस्थाश्रम अच्छी तरह जीना हो तो पत्नी को आदर दो। हमारे यहां स्त्री को वामभाग में बिठाने की परंपरा है। हमारा हृदय बांयी ओर है। मतलब पुरुष नारी को अपने हृदय में स्थान दे। अब जिस घर का दांपत्य ऐसा होगा यहां एक कन्या का जन्म होगा। शिव और पार्वती का दिव्य दांपत्य था। उस दिव्यदर्शन से एक कन्या का जन्म हुआ। उस कन्या का नाम है रामकथा। और ऐसी कन्या विश्व की माँ-बाप बन बैठी।

सती पूछती है, 'प्रभु, मेरा भ्रम अब तक टूटा नहीं कि राम सचमुच ईश्वर है? रामकथा सुनाकर मुझे संदेहमुक्त करो।' और शिवजी ने रामकथा का प्रारंभ किया। रामकथा में राम के जन्म पहले रावण के जन्म की कथा है। पहले राक्षस जन्मे, क्योंकि उसका निशिचर वंश है। दिन से पहले रात्रि होती है। सूर्यवंशी राम दिवस का प्रतीक है। इसलिए राम बाद में आये। रावण का अवतार हुआ है। रावण, कुंभकर्ण, विभीषण ने बहुत तप किया। वरदान पाकर रावण बेफाम हुआ! जगत में कोई सलामत न रहा। लंका में राजधानी की स्थापना की। कुबेर का धनभंडार लूंटा। वेद-पुराण की बातों करनेवाले सभी ऋषिमुनिओं को देशनिकाल किया। संसार में भ्रष्टाचार छा गया। धरती गाय का रूप लेकर ऋषिमुनिओं के पास गई। सब मिलकर देवताओं के पास गए। आखिर सब ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने पृथ्वी को ढाढस दी। सभी ने मिलकर परमपरमात्मा की स्तुति की। चलो हम भी वह स्तुति में - प्रार्थना में संमिलित हो -

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रियकंता।।

सब की प्रार्थना का स्वीकार हुआ। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो। मैं अयोध्या में रघुवंश में अवतार लूंगा।' प्रभु को पाने के तीन सोपान है। सबसे पहले पुरुषार्थ करना। पुरुषार्थ की सीमा आ जाय फिर प्रार्थना करना, और प्रार्थना की सीमा आये फिर प्रतीक्षा करना।

अयोध्या के साम्राज्य का वर्तमान राजाधिराज दशरथजी कर्मयोगी, ज्ञानयोगी और भक्तियोगी है। वह वेद के तीनों कांडों का समन्वित रूप है, लेकिन एक दु:ख है कि उनको पुत्र नहीं। दशरथजी समिध लेकर गुरुद्वार गए। सुख और दु:ख दो समिध है। गुरु को अपना दु:ख और सुख सुनाए। वशिष्ठजी ने कहा, 'राजन्, मैं तो कब से प्रतीक्षा में था। आज आपने पूछा है तो कहूं, आप एक नहीं चार पुत्रों के बाप हो जाओगे। ब्रह्म आपके आंगन में बालक बनकर खेलेगा। लेकिन पुत्रकामेष्टि यज्ञ करना होगा।' यज्ञ आरंभ हुआ। स्नेहयुक्त आहुतियां दी गई। यज्ञकुंड से यज्ञपुरुष स्वयं प्रकट होते हैं। वशिष्ठजी को प्रसाद देकर कहा, 'राजा को कहो, अपनी रानियों को जथाजोग बांट दे।' दशरथजी ने रानियों को यथायोग्य प्रसाद बांटा। प्रसाद के प्रताप से तीनों रानियां सगर्भा स्थिति का अनुभव करती है। थोड़ा समय बीता। परमात्मा को प्रकट होने का समय निकट आया। पंचांग अनुकूल हुआ। जड़-चेतन हर्षित है। नौमी तिथि, शुक्लपक्ष, मध्याह्न का सूर्य, शीतोष्ण है। सभी देवता भगवान की गर्भस्तुति करने लगे। जगनिवास परमात्मा माँ कौशल्या के भवन में चतुर्भुज रूप में माँ के सन्मुख प्रकट हुए -

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

माँ देखती रह गई! माँ को जब ज्ञान हुआ तो भगवान ने मुस्कुरा दिया। संतों से सुना है, फिर माँ मुंह फेर लेती है, 'आप आये, स्वागत है, लेकिन आपने मनुष्य के रूप में आने का वचन दिया था और आप नारायण के रूप में आये!' यद्यपि फिर माँने ब्रह्म को बालक बनाया। हमारे देश की एक स्त्री ईश्वर को मनुष्य होने की शिक्षा देती है। प्रभु नवजात बालक की तरह माँ की गोद में आकर रुदन करने लगे। बालक का रुदन सुनकर अन्य रानियां संभ्रम दौड़ आई। दशरथजी को खबर दी, 'महाराज, बधाई हो! कौशल्याजी ने पुत्र को जन्म दिया।' सुनते ही दशरथजी ब्रह्मानंद में डूब गए। वशिष्ठजी को बुलाया। वशिष्ठजी आये और कहा, 'राजन्! आपके घर ब्रह्म प्रकट हुए हैं।' राजा की आंखें भीगी हुई। और महाराज परमानंद में डूब गए। अयोध्या में रामजनम की बधाई शुरु हुई। मेरे भाई-बहनों, २०१४ की साल शुरू हो रही है, भगवान ईसु की यह पहली तारीख, पहला रामजनम हो रहा है तब आदिपुर की व्यासपीठ से पूरे जगत को रामजनम की बधाई हो।

हम पंचतत्त्वों से बने हैं, इसलिए इस पांचों से हमारा जोड़ है। नये साल के आरंभ में हम सब शिवसंकल्प करें, आकाश से नई सीख लें, दीक्षा लें कि हम भेद नहीं करेंगे, अविभक्त जीवन जीएंगे। पृथ्वी से ये दीक्षा लें, हमारी औकात के अनुसार सबको धारण करेंगे। जल से दूसरों की तृषा बुझाने का संकल्प करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करें। अग्नितत्त्व से सीखें, अनावश्यक वस्तु को जला दे। आखिरी सूत्र वायु, वायु से सीखें, सबका जीवन बनना लेकिन अपने को कभी दिखाना मत। अथवा वायु के तत्त्व को इस रूप में समझें कि वायु तो न पकड़ा जाय, लेकिन वायुपुत्र हनुमान को पकड़ें, उनका आश्रय करें।

कथा-दर्शन

रामनाम कल्पवृक्ष है।

हनुमंततत्त्व निरंतर जाग्रत तत्त्व है।

शरणागति एक बार होती है और एक की ही होती है।

समर्थ का आश्रय करने से हम कभी अकेले नहीं होते।

गुरु दुनियाभर की माँ का विग्रह है।

गुरुपदरज की एक अलौकिक द्युति है।

मौन एक बड़ी औषधि है।

दीक्षित स्थान सचेत होते हैं।

प्रसन्नचित्त परमात्मा को पाने का द्वार है।

गुरु की चरणरज आश्रित के मनरूपी दर्पण की मलिनता को साफ़ करती है।

'रामचरित मानस' किताब नहीं है, तुलसी का कलेजा है।

कथा इन्सान प्रकट करती है। भगवद्कथा केवल धार्मिक संमेलन नहीं है, ये प्रेमयज्ञ है।

मैं मेरी रामकथा को ज्ञानयज्ञ नहीं कहता हूं, प्रेमयज्ञ कहता हूं।

व्यासपीठ जीवंत है और शाश्वत है, राजपीठ अस्थिर और नाशवंत है।

गुरु अपने आश्रित के मन का ज्ञाता भी है और उनके मन का निर्माता भी है।

अधिकारी शिष्य अपने गुरु को भी भगवान की प्राप्ति करवाते हैं।

जैसे नारी पतिव्रता होती है, इस तरह शिष्य गुरुव्रता होना चाहिए और गुरु शिष्यव्रता होना चाहिए।

सद्गुरु की रजमात्र कृपा से संदेह और भ्रम का निवारण होता है।

प्रसन्नता से की हुई प्रत्येक दिनचर्या ये पूजा है, ये भजन है, ये रामकथा है।

केवल बलवान होना पर्याप्त नहीं, आदमी में बल का विवेक होना जरूरी है।

बोलने से बिखर जाते हैं, मौन हमें इकट्ठा करता है।

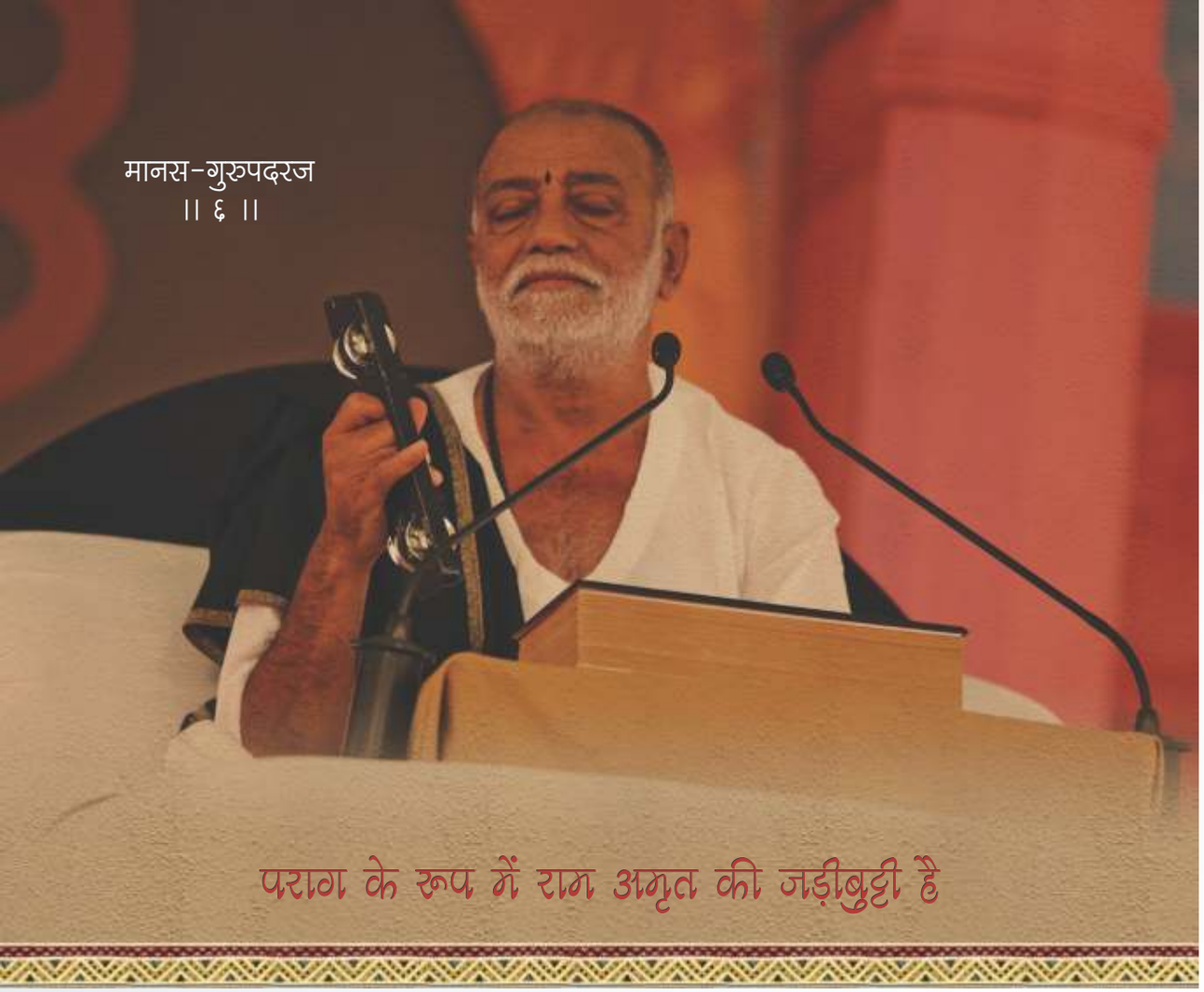

मानस-गुरुपदरज
।। ६ ।।

पराग के रूप में राम अमृत की जड़ीबुट्टी है

आज प्रश्न है, ''पूज्यपाद गोस्वामीजी पदरज के लिए चार शब्द प्रस्तुत करते हैं, एक तो 'रज', दूसरा 'पराग', तीसरा 'धूरी' मानी धूल, चौथा 'रेणु', ये चार शब्द है, जिसके प्रयोजित करने के पीछे विशिष्ट अर्थसंदर्भ है कि केवल पर्याय ही है?'' जब कोई साधुचरित सर्जक एक ही तत्त्व समझाने के लिए, जिसको शास्त्रीय भाषा में कहते हैं, 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' इस सूत्र अनुसार एक ही सत्य को बुद्धजन विध-विध एंगल्स से देखते हैं। तो रज, पराग, धूली और रेणु उसके बिलग-बिलग अर्थ भी हो सकते हैं।

'रामचरित मानस' जब रज की चर्चा करता है तब उद्घाटन 'पराग' शब्द से करता है। गुरुवंदना की प्रथम पंक्ति जहां 'पराग' शब्द का प्रयोग है। 'बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।' प्रत्येक फूल की अपनी-अपनी पराग होती है। विशेष रूप में कमल का जो कोष होता है, अंदर का भाग जो पूरा कमल विकसित हो जाय और अंदर का जो गर्भ भाग है, पराग का निवास वहीं होता है। एक बहुत सूक्ष्म रज तत्त्व वहां होते हैं। किसी के चरणों को जब कमल की उपमा दी जाती है तब उस पर रही रज को संस्कृत में सदैव पराग कहा है। ये पराग नाम से संबोधित होता है। समग्र पैर कोई

ऐसी धूरी पर चले और उसमें पूरा पैर खूंप जाय और फिर हम पैर बाहर निकाले तब पूरा पैर मिट्टी से आवृत्त हो जाय उसे धूल कहते हैं।

बाप, शास्त्र का एक नियम है कि भाव और अर्थ अमूर्त है। उसको भाषा के द्वारा मूर्त किया जाता है। आपके मन में, मेरे मन में जो भाव है वो करीब-करीब अमूर्त है। हां, कोई बुद्धपुरुष होता है वो अमूर्त भाव को भी पकड़ लेता है। बिन बोले शब्द का अर्थ भी वो समझ लेता है। लेकिन हम जैसों के लिए, भाषा ही एक माध्यम है, जो अमूर्त भाव और अर्थ को प्रकट करे। भाषा लेकर और अर्थ लेकर जो अमूर्त है उसको वक्ता सरल कर देता है। शास्त्र के प्रत्येक शब्द इतने सरल नहीं है। जिसका गुरु सहज होता है उसकी जबान से अर्थ सरल होता है। जो जटिल है, आक्रमक है, कठोर तपस्वी है; मुस्कुराहट के बदले जिसके चेहरे पर आक्रमकता करीब-करीब उसका स्थायीभाव हो जाता है! ऐसे समय में जिस साधक का गुरु सहज होता है उसके द्वारा दीक्षित आश्रित की बोली में सरलता होती है। उसका अर्थ सरल हो जाता है।

तो बाप, एक ही शब्द के अर्थ के संदर्भ है बिलग-बिलग। पूरा पैर मिट्टी में-रेत में खूंप जाय उसको धूल कहते हैं। केवल नीचे का भाग मिट्टी से आवृत्त हो जाय उसको रज कहते हैं, ये रज है। संपूर्ण चारों ओर ये धूली है। चरण की ऊंगलियां है ये कमल की पंखुडियां है। पांचों ऊंगलियां के बीच का भाग है उसमें जो रज है वो पराग है। और आपको बहुधा 'पराग' शब्द मिलेगा वहां चरण के साथ कमल की उपमा दी ही है।

पद कमल परागा रस अनुरागा
मन मन मधुप करै पाना।।

ये है पराग। चारों और मिट्टी धूल। पैर का तला, ये है रज। और नीचे रज नहीं है, कार्पेट है। आप कल्पना कीजिए हमारे लिए साधुओं ने कितना चिंतन किया! एक-एक छोटे सूत्र को भिन्न रुचिवालें साधकों के दिल में सूत्र प्रकाश के लिए जो वाट प्रकट की है सहज सद्गुरुओं ने। प्रणाम के सिवा इन महापुरुषों के ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकते। केवल प्रणाम।

मेरी बहुत जानकारी नहीं है, लेकिन जैनों में प्रणाम करे तो माथे पर कुछ ऐसी मिट्टी जैसे पीले पदार्थ डालते हैं। जैसे कई लोग कहीं माथा टेकता है तो कंठी डाल देते हैं। ये सबकी अपनी रीत है, उदारता है, चलो, जो हो। लेकिन हम लोगों ने इस पावनी परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिए एक विचार किया है ये सिर पर कोई ऐसी चीज़ डाली जाती है, जो हमारी बुद्धि को विशुद्ध करे। हमारे विचारों को सही दिशा में गति कराये। बुद्ध के बारे में कह सकता हूं कि, बुद्ध यद्यपि ईश्वर में नहीं मानते हैं, आत्मा की चर्चा भी बहुत कम करते हैं बुद्ध, लेकिन बुद्ध के इस काल के जो शिष्य रहे, आनंद आदि। उस समय तो मूर्तिपूजा भी नहीं थी, हमारे इतिहासविद् कहते हैं कि मूर्तिपूजा यदि हमारे यहां आई है तो भी वो बौद्धप्रभाव है। क्योंकि सबसे पहले दुनिया में बौद्ध की प्रतिमायें बनी है। जो ईश्वर में नहीं मानते, मूर्ति में नहीं मानते, उनकी ही मूर्ति ज्यादा बनी है! भगवान महावीरस्वामी, वो भी मूर्ति की बात नहीं करते और उनके देरासर में देखो तो कितनी मूर्तियां है! देशकाल के अनुसार ऋषिमुनियों ने अनुग्रह किया कि अमूर्त को मूर्त देखने का एक किमिया है।

तो बाप, बुद्ध के शिष्य जिसमें आनंद के बारे में मैं खास कह सकता हूं कि आनंद निरंतर बुद्ध के साथ रहा है। निरंतर एक बुद्धपुरुष का सेवन उसने किया है प्रसिद्धिमुक्त चित्त से। दूसरों को दिखाना है ऐसी वृत्ति भी जिसके अंत:करण में नहीं है और ये लाभ मिले तो कोई फ़ायदे की वृत्ति, मोक्ष तक के फ़ायदे की वृत्ति जिसमें उदित न हो ऐसे किसी साधक की, कोई बुद्धपुरुष की थोड़ी सेवा मिल जाय इनके इकत्तर पेढी का पुण्य है।

बहुत बड़ी परंपरा का ये फल है कि कोई बुद्धपुरुष की सेवा मिले। उनके पीछे हमारा कोई इरादा न हो। सेवा बाद में करते हैं, फल पहले आ जाता है।

तो, आनंद भगवान तथागत के साथ इतना निकट रहा है। मूर्ति का कोई प्रश्न नहीं, गुरुदेव स्वयं मूर्तिमंत है, चेतना से भरे हैं। लेकिन आनंद के जीवन से ऐसा पता लगता है कि ये आदमी जो उसका कषाय वस्त्र होता था, जो बौद्ध धर्म में एक प्रकार का खास गणवेश, बौद्ध भिख्खूओं का होता है उसमें से एक छोटा-सा कपड़ा फ़ाड़कर चींथड़ा, तथागत जब उपदेशना देने जाते थे भिख्खूओं के सामने, पीछे-पीछे ये जाता था तब थोड़ा चरण की रज लेकर वो चींथड़े में बांध देता था, वो प्रवचन नहीं सुनता था। याद रखना बुद्ध के जो बहुत बड़े शिष्य हुए हैं, जो बहुत निकट या तो दूर रहकर बुद्ध को पूरे रूप में पा चूके थे ऐसे आदमी, प्रवचन में उसको पता ही नहीं कि बुद्ध ने आज क्या कहा? उसका इरादा ये रहता था कि बुद्ध बोले, उसके चैतन्य बिखर जाय, इससे पहले वो मिट्टी एकत्रित कर ले और वो ही रज की पोटली चींथड़े में बांधकर वो रखते थे।

परम व्यक्ति की सेवा मिले तो दो काम होतें हैं। एक तो ऐसे कोई परम गुरु की प्राप्ति हो जाय तो आदमी को सुषुप्ति आ जाय। आदमी गहर निंद में चला जाय या तो सो न पाये, हम सो न सके। दो घटना हो सकती है। तो, आनंद सो नहीं पाता था। अब वो जो पोटली बनाता था रज की, वो सोते समय अपनी आंखों पर बारी-बारी पोटली रखता था, जैसे कोई पोता रखता है आंखों पर। ये ही उसकी साधना का एक प्रयोग था। रज की महिमा हर जगह मिलती है।

तो, मेरे भाई-बहन, पैर रखा जहां मिट्टी नहीं है, कार्पेट बिछाई है, कार्पेट भी बहुत बार साफ कर दी है और कोई महापुरुष आनेवाले हैं, नीचे मिट्टी है नहीं और रज प्राप्त करना कठिन है, न तो पराग होने की संभावना है और धूली की भी संभावना नहीं है, लेकिन फिर साधनाक्रम में एक पड़ाव ऐसा आता है कि ऐसे बुद्धपुरुष को छुने के लिए वायु बहने लगती हैं। शीतल मंद सुरभि बहे। और जब वायु बहती है तब जहां-जहां से वायु आती है, वहां से फूलों की खुश्बू रिक्वेस्ट करती है कि हमें लिये चलो! हम भोगी के लिए महक ना बने, कोई तथागत की महक बने। प्रकृति के तत्त्व वायु द्वारा बुद्धपुरुषों के पास जाने के लिए आतुर रहते हैं। तो बाप, ऐसे समय में जब वायु चलती है तो खुश्बू साथ में चलती है, अस्तित्व के तत्त्व अपनी-अपनी सेवा समर्पित करे उसी समय मिट्टी उस वायु का संग कर लेती है और वो रजमय पवन उड़कर जब कोई महापुरुष जा रहे हैं उनके पैरों के उपर सट जाय उसको रेणु कहते हैं। बिलकुल नीचे रज, उपर आये रेणु, पूरा पैर रजमय ये धूल और पैरों के अंगूठे और ऊंगलियों के बीच में लग जाय वो पराग है। इतना फ़र्क साधनापंथ में सद्गुरु उपासकों के जीवन में बताया गया। हम और आप गुरु के चरणपदरज के उपासक हैं तो ये भी देख लें कि ये चरण तले की रज है? अंगूठे और उसके बीच की रज है?

रज का भावजगत भी बनाया जाता है और भावजगत में रज का उपासक भी वो शायद स्थूल रूप में ज्यादा आगे भी हो सकता है। अब पराग की व्याख्या जब आती है तो तुलसीदासजी शब्द लगाते हैं, 'सुरुचि, सुबास सरस अनुरागा।' पराग की सीधी व्याख्या। पराग किसको कहे? सुरुचि, सरुचि का मतलब है स्वादु। जीभ उपर राखवा जेवुं। सुबास है, कमलकोष में रहिए तो उसमें सुवास है। सरस है, ये रसयुक्त है। कौन-सा रस? अनुरागा, प्रेम रस है। अनुराग सबसे बड़ा रस है। इसलिए गुजराती में मांगा गया -

प्रेमरस पाने तुं मोरना पिच्छधर,
तत्त्वनुं टूंपणुं तुच्छ लागे।

पराग के उपासक स्वाद पाता है, सुवास पाता है, प्रेमरस पाता है। ये सब भक्ति मार्ग की उपलब्धियां है। फिर पराग की व्याख्या करते तुलसीदासजी दूसरी पंक्ति लिखते हैं -

अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भवरुज परिवारु।।

क्या है ये पराग? पराग के रूप में रज अमृत की जड़ीबुट्टी है। अमर कर देती है। आत्मा की अमरता का बोध करा देती है। देह प्रवासी है, निवासी नहीं है। भवरोग की स्वादु औषधि है। तुलसी कहते हैं मानसिक रोग सबको लागू हुआ है, लेकिन कोई विरल ही जानते हैं कि मुझे लोभ के कफ का रोग हुआ है, मुझे क्रोध की पित्तवृत्ति हुई है और मुझे काम की वातवृद्धि हुई है। हमें और आपको पता तब लगेगा जब पराग का हमने स्वाद लिया हो, इस पराग का यदि हमने सेवन किया हो।

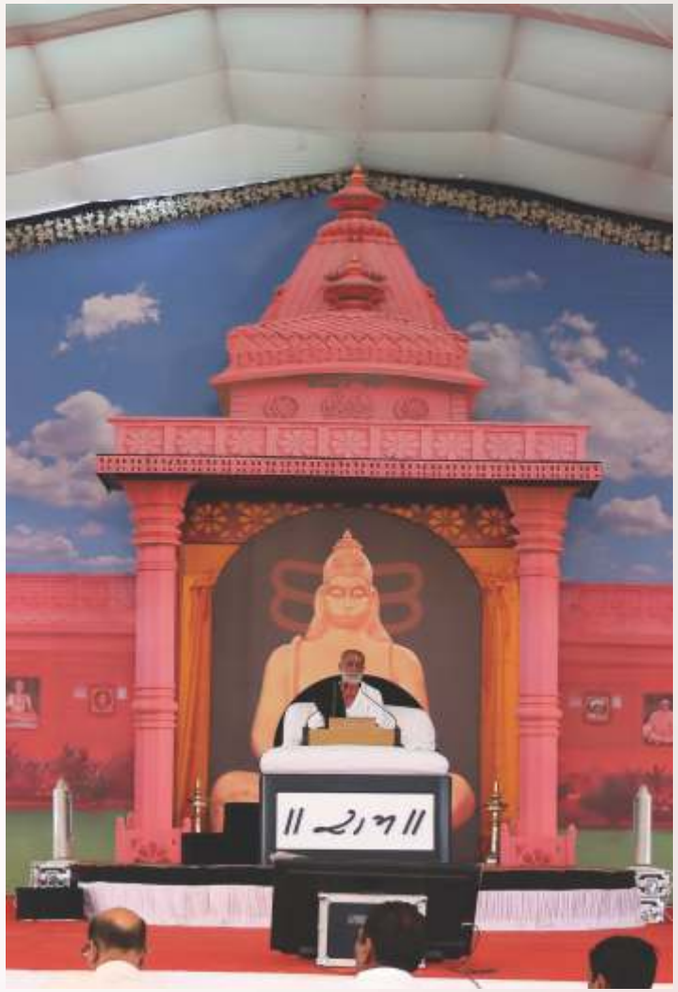

ग्रंथ लड़ा रहे हैं! शास्त्र शस्त्र बने जा रहे हैं! आपको अद्भुत नहीं लगता कि कुरुक्षेत्र के मैदान में, युद्ध के समय जहां शस्त्र सिवा कुछ नहीं, वहां क्रिष्न 'गीता'रूपी शास्त्र की स्थापना करते हैं! मानों वह कह रहे हैं कि शस्त्र से उद्धार नहीं होगा, मुक्ति तो 'गीता' से पाओगे, शास्त्र से पाओगे। शास्त्र लाने का अर्थ यह है। ऐसी 'गीता' समझ में आये तब समझना गुरु की पराग काम में आ गई। तो, मेरे कहने का मतलब ग्रंथ ग्रंथि भी पैदा कर सकता है और ग्रंथ निर्ग्रंथ भी कर सकता है। समस्त रोग का जो विशाल परिवार है, रोगों के बृहद् कुल को नष्ट करनेवाला गुरुचरण का किमिया पराग हमें लगता है। सेवन शरू करो। रज का तिलक होता है। वह समग्र दैवी गुणों को इकठ्ठा कर देता है। जीभ पर

लगाने से स्वादु होता है। नयनांजन बने।

ऐहि बिधि सब संसय करि दूरी।
सिर धरी गुरु पद पंकज धूरी।।

गोस्वामीजी कहते हैं, मैंने मेरे मस्तक पर गुरु की चरणरज-धूल रखकर मेरे तमाम संशय दूर किए। 'अयोध्याकांड' में गोस्वामीजी ने लिखा है -

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं।
ते जनु सकल बिभव बस करहीं।

तुलसी कहते हैं, जो गुरु के चरण की रेणु शिर पर धारण करता है वो तमाम वैभवों को वश कर लेता है। रज के उपासकों को वैभव वश होते हैं। विभव का अर्थ होता है ऐश्वर्य। विभव का एक अर्थ परिपालन भी होता है। विभव का अर्थ ऐश्वर्य। ऐश्वर्य सात प्रकार के है। सात प्रकार के ऐश्वर्य गुरु उपासकों को वश होते हैं। मानों उनकी परछाई बनकर पीछे दौड़े! पहले तीन वैभव को, ऐश्वर्य को ग्रंथों में एषणा भी कही गई है - लोकेषणा, सुतेषणा, वित्तेषणा ये तृष्णा है। देह वृद्ध हो, लेकिन तृष्णा वृद्ध नहीं होती। ये दोष के रूप में एषणा है। गुरुरज के उपासकों के लिए ये दोष नहीं, एषणा नहीं, ये ऐश्वर्य है। जिनके घर अच्छे संतान हो वो उनका पुत्रैश्वर्य है। परिवार के सभी बालकों शीलवान हैं, अच्छे हैं, माँ-बाप की परंपरा को सहज निभाते हैं, यह हमारा ऐश्वर्य है। अच्छे माँ-बाप पुत्रों का ऐश्वर्य; अच्छे पुत्र माँ-बाप का ऐश्वर्य।

दशरथजी ने गुरुचरणरज को मस्तक पर चढ़ाई तो उनकी कीर्ति, उनका लोकादर कितना था! तुलसी ने लिखना पड़ा कि अनेक ब्रह्मांडों में उनकी कीर्ति छा गई, क्योंकि वह उनका लोकैश्वर्य था। तीसरा ऐश्वर्य, वित्तैश्वर्य। भौतिक समृद्धि, संपदा। दशरथजी की संपदा -

जब तें रामु ब्याहि घर आए।
नित नव मंगल मोद बधाये।।
भुवन चारिदस भूधर भारी।
सुकृत मेघ बरसहिं सुख बारी।।
रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई।
उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।

समृद्धि की नदियां मिलती है अयोध्या के समुद्र में। तो बाप, लोकैश्वर्य, सुतैश्वर्य, वित्तैश्वर्य गुरुचरणरज का प्रताप है। यह तीनों ऐश्वर्य सांसारिक है। कुल सात ऐश्वर्य है। और चार आध्यात्मिक ऐश्वर्य है। उनमें से पहला वैराग्य का ऐश्वर्य। निष्कुलानंदजी कहते हैं -

त्याग न टके रे वैराग विना, करीए कोटि उपाय जी;
अंतर ऊंडी ईच्छा रहे, ते केम करीने तजायजी।
वेश लीधो वैरागनो, देश रही गयो दूरजी;
उपर वेश आछो बन्यो, मांहि मोह भरपूरजी।

महाराज मनु के पास लोकैश्वर्य, सुतैश्वर्य, वित्तैश्वर्य सब ऐश्वर्य थे, बाद में एक वैराग्य का ऐश्वर्य भी उनको मिला है। वैराग्य के पंथ पर बहुत विघ्न आते हैं, लेकिन जो विघ्नों को पार कर जाय उनके ऐश्वर्य को इन्द्र भी पहुंच नहीं पाता। हाथ से छूटे वह त्याग और हृदय से छूटे वह वैराग्य। स्वयंभू मनु और शतरूपा सातों ऐश्वर्य का मालिक है, जो दूसरे जनम में राम के माँ-बाप बनते हैं।

दूसरा, भजन का ऐश्वर्य, भक्ति का ऐश्वर्य। गंगासती कहती है, जिनको सदा भजन का आहार है, भजन का डकार है। भजन या भक्ति बिना जीवन बीते वो तो ऐश्वर्यहीनता है। तीसरा है ज्ञान का ऐश्वर्य, प्रज्ञा का ऐश्वर्य। और चौथा मनु और शतरूपा द्वारा प्राप्त हुआ विवेक का ऐश्वर्य। कई बार लोगों के पास ज्ञान का ऐश्वर्य होता है, लेकिन ज्ञानी कभी-कभी विवेक चूक जाता है। दूसरों को तिरस्कृत करता है। चंद्रेश मकवाणा की गज़ल है -

एक माणसने मींढो गणवा,
भेगी थई छे नात, कबीरा।

तो, ज्ञान का ऐश्वर्य, वैराग्य का ऐश्वर्य, भक्ति का ऐश्वर्य और विवेक का ऐश्वर्य। तुलसी कहते हैं, जो गुरुचरणरज को मस्तक पर लगाते हैं उनके घर यह सकल सात ऐश्वर्य सामने से आते हैं। वशिष्ठ गुरु की चरणधूलि को मस्तक पर चढ़ाने का यह प्रताप है कि दशरथजी में यह सातों वैभव है। कीर्ति या लोकैश्वर्य है। चार पुत्र वेद के तत्त्व है। रिद्धि-सिद्धि-संपत्ति की नदी बहती है। वैराग्य भी कैसा? परम तत्त्व के वियोग में प्राणत्याग किया। स्वयं ज्ञानस्वरूप है। और भक्ति भी कैसी? राम के विरह में प्राण छोड़ा वह त्याग, लेकिन साथ ही भजन का प्रभाव भी है।

तो, 'मानस' में पराग की परिभाषा, रज की परिभाषा, रेणु की परिभाषा और धूरी की परिभाषा है। यह चारों आश्रित लोगों के लिए एक परम धन है, उसकी बिलग-बिलग परिभाषा है। यह है 'मानस'की गुरुपदरज।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन।
बरनऊं राम चरित भव मोचन।।

गुरु की चरणरज आश्रित के मनरूपी दर्पण की मलिनता को साफ़ करती है। दर्पण हमें हम जैसे हो वैसा ही दिखाता है। लेकिन दर्पण मैला हो तो हम हमें अच्छी तरह से देख नहीं सकते। यद्यपि दर्पण हमें हम जैसा हो वैसा ही दिखाता है, लेकिन वो बिंब नहीं, प्रतिबिंब दिखाता है। बिंब सच्चा है, प्रतिबिंब नहीं। प्रतिबिंब माया है, वैसा वेदांत कहता है। फिर भी दर्पण पर जो मैल चढ़े वह विशिष्ट रज साफ करती है। मन के उज्ज्वल दर्पण का मेल गुरुचरणरज से साफ होता है। 'अयोध्याकांड' के आरंभ का दोहा -

श्री गुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि।।

हमारे यहां फिल्म में भी एक गीत आया। बड़ा प्यारा गीत है -

तोरा मन दर्पन कहलाये।
भले बूरे सारे कर्मों को देखे और दिखाये ...

इसमें क्या बूरी बात है? सोने की लगड़ी कीचड़ में गिर जाय तो वह सोना लोहा नहीं हो जाता। कीचड़ में से निकालकर उसको धो डालो तो वह सोना ही होता है। अर्थ तो हमें करने होते हैं। हमारा भाव बराबर होना चाहिए। सुख की कलियां और दुःख के कांटे, वो सबका मूल तो मन है। हम किस तरह देखते हैं उस पर पूरा आधार है।

> भाव और अर्थ अमूर्त है। उसको भाषा द्वारा मूर्त किया जाता है। आपके मन में, मेरे मन में भाव है वो करीब-करीब अमूर्त है। हां, कोई बुद्धपुरुष होता है वो अमूर्त भाव को भी पकड़ लेता है। बिन बोले शब्द का अर्थ भी वो समझ लेता है। लेकिन हम जैसों के लिए, भाषा ही एक माध्यम है, जो अमूर्त भाव और अर्थ को प्रकट करे। भाषा लेकर और अर्थ लेकर जो अमूर्त है उसको वक्ता सरल कर देता है। शास्त्र के प्रत्येक शब्द इतने सरल नहीं है। जिसका गुरु सहज होता है उसकी जबान से अर्थ सरल होता है।

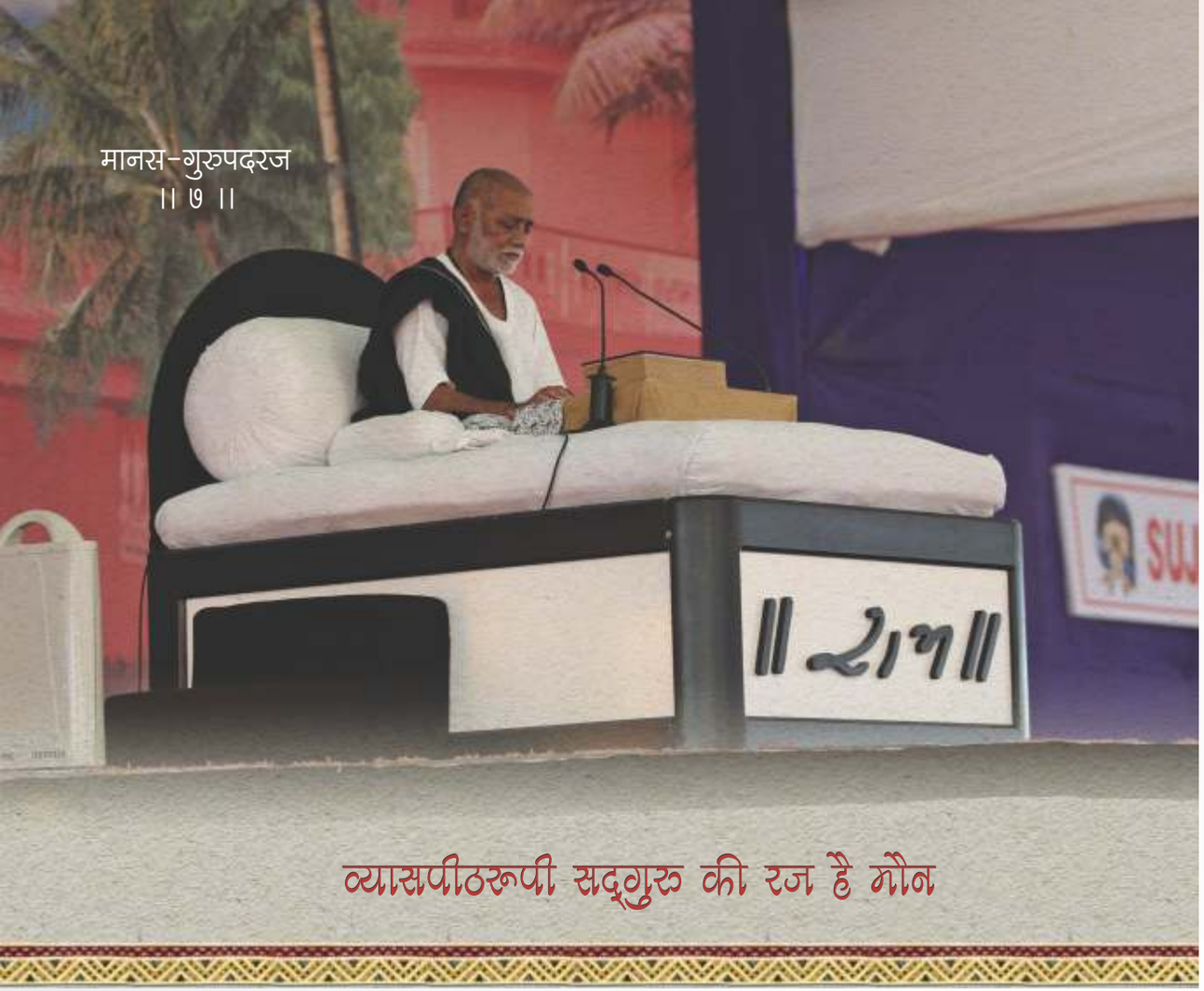

मानस-गुरुपदरज
॥ ७ ॥

व्यासपीठरूपी सद्गुरु की रज है मौन

बाप, रामकथा के आरंभ में पुन: एक बार कथा में अत्र-तत्र बिराजित सभी पूजनीयों को प्रणाम। सोनल बीज है आज, आप सबको व्यासपीठ की ओर से सोनल बीज की बधाई। जय माताजी। बाप एक श्रोता ने पूछा है, ''व्यासपीठ यदि सद्गुरु है, तो व्यासपीठरूपी सद्गुरु की चरणरज क्या?'' व्यासपीठ को यदि हम सद्गुरु समझें तो उसकी रज का नाम है मौन। व्यासपीठ का स्थायी भाव मौन ही है। व्यासपीठ का स्वधर्म मौन है। व्यासपीठ हमें मौन का बोध देती है, मौन कर देती है, मौन में स्थापित करती है। आप कहेंगे कि व्यासपीठ पर बैठनेवालें तो घंटों बोलते हैं! लेकिन आपने व्यासपीठ पर बोलनेवाले के बारे में नहीं पूछा है। आपने व्यासपीठ के बारे में पूछा है। तो, व्यासपीठरूपी सद्गुरु की चरणरज मौन है। व्यासपीठ निरंतर मौन होती है। श्रद्धा का जहां तक सवाल है, विधिवत् नहीं, लेकिन विश्वासवत् जहां आप व्यासपीठ की स्थापना करो यहां यदि कोई भी न बैठा हो तो भी व्यासपीठ खाली नहीं होती। वहां कोई अमूर्त है। बोलनेवाला अमूर्त की गोद में मूर्त होता है। बोलनेवाला अमूर्त के मौन का प्रसाद लेकर मुखर होता है।

मैंने कभी व्यासपीठ को रिक्त नहीं देखा। मैं क्यों परिक्रमा करता हूं? मैं क्यों उसको पालव प्रसार कर प्रणाम करता हूं? क्या है मेरा इरादा? व्यासपीठ मेरी श्रद्धा में जीवंत है और शाश्वत है, राजपीठ अस्थिर और नाशवंत है। तो, मैं एग्री हूं, व्यासपीठ सद्गुरु है, तो उसकी रज है मौन। व्यासपीठ से ऊतरकर मैं मौन हो जाता हूं। कोई अमूर्त बैठा है गादी पर। इसलिए मैंने तो ये गादी समझा ही नहीं। मैंने कई बार कहा है, ये मेरे लिए गोद है। जैसे माँ की गोद है। मैं प्रार्थना करूं कि जब-जब आपको समय मिले, थोड़ा मौन रहो। अपने व्यवहार जगत में देखा है, कई लोग बहुत बोलते हैं! अच्छा बोले कोई बात नहीं, अकारण बोलते हैं! चलो ठीक है, विषय का कोई लेना-देना नहीं। 'गीता' ने जिसको दीर्घसूत्री कहा है ऐसा बोलते हैं! मेरे भाई-बहन, आप सब चूप बैठे हैं इसलिए सुख ले रहे हैं। मौन सुख देता है। हमें मौन इकट्ठा करता हैं।

मौन एक बड़ी औषधि है। मुझे कोई मौन के बारे में पूछते हैं तो कहता हूं, छोड़ यार, तेरा जनमदिन आये तो जितनी साल का इस जनमदिन में होगा, इतने घंटे का पहले मौन रख। फिर जनमदिन पर मौन मत रखना, वर्ना बीबी-बच्चें नाराज़ होंगे। किसी को नाराज़ करके व्रत मत करना। व्रत का अर्थ है प्रसन्नता बांटना। तुम्हारे मौन से परिवार अकुलाये ऐसा व्रत मत करो। साठ साल का होनेवाला हो तो साठ अवर का मौन रखो। सप्ताह में हो सके, एक दिन मौन रखो। महिने में एक दिन मौन, साल में थोड़ा मौन रखो।

बारह महिने में एक महिना जो चूप हो जाय, वो एक महिने के लिए संन्यासी है। ओशो रजनीशजी ने कभी कहा कि व्यक्ति को बारह महिने में एक महिने का संन्यास लेना चाहिए, जो बाकी के ग्यारह महिने में अपने संसार को सुगंधित रख सकता है। ओशो का प्यारा प्रस्ताव था। एक महिना अपनेआप को रिक्त करना। अपनेआप को हर बंधनों से मुक्त करना। न कोई दफ्तर, न कोई हिसाब, न कुछ कठिन है।

उदार ऋषिओं ने हमारे यहां तीन साल में एक अधिक मास बता दिया। और इस अधिक मास में हम कुछ नहीं करते। साल में नहीं तो तीन साल में कोई विशेष महिने का मौन रखो। कामकाज बंद कर दो ऐसा नहीं। ऐसा न तो वेदों ने कहा है। वेद तो कहते हैं तू खूब धन कमा। अपरिग्रह करो, ये भी कुछ धर्मों की धारा है। जैनादि कहते हैं, संग्रह ना करो। उसके सामने परिग्रह भी एक परंपरा है कि खूब कमाओ, खूब बांटो। इसकी भी इज़्ज़त करनी चाहिए। ये वेदवचन है। हम साल में एक महिना अपनी ऊर्जा को संग्रहित करे और फिर ग्यारह मास हम उसको बांटे।

तो बाप, मौन व्यासपीठ का स्थायीभाव है और मौन का मतलब ये नहीं कि होठ न हिले। ये शब्दों का मौन है, शब्दों का उपवास है। लेकिन मौन का एक अर्थ 'भगवद्गीता' में दिया है, जितना समय तुम्हारा मन प्रसन्न रहे ये तुम्हारा मौन है। मन प्रसन्नता से लबालब भरा हो उसको मौन कहते हैं। क्यों हम सुखी है इस पंडाल में? आप कहेंगे कि आप तो बोलते हैं! मेरा बोलना भी बोलना है, लेकिन कोई भी वक्ता बोलता है, वो मौन में से ही शब्द पैदा होता है। बिना मौन कहां बोला जाता है?

मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

शंकरजी भी मौन में डूबे थे, फिर पार्वती ने प्रश्न किया

और फिर बोले, उसका मौन बोला।

शब्दो भले आवो पण वळतर न मांगशो,
शायर अने श्रोता वच्चे दलाली न जोईए।
हुं आज मने बहार बेसाडीने आव्यो छुं,
मस्तोनी महेफिलमां मवाली न जोईए।

मौन हमें सुख देता है। बोलने से बिखर जाते हैं, मौन हमें इकठ्ठा करता है। व्यासपीठ सद्गुरु है तो मौन उसकी रज है। मतलब, रजमात्र मौन से सुखानुभूति होती है।

तो बाप, रज की महिमा अपरंपार है। कल एक भाई की जिज्ञासा थी कि, 'बापू, आप चरणरज की बात तो करते हैं, लेकिन यज्ञ की रज का क्या?' यज्ञ की रज उसकी भस्म है। और ये हमारी बड़ी सनातन परंपरा है। यह साधुलोग ऐसे ही यज्ञ के पास नहीं रहते।

धूणी रे धखावी बेली, अमे तारा नामनी।
अमे तारा नामनी, अलखना रे धामनी ...

हमारे सनातन धर्म का, वैदिक धर्म का सबसे पहला देवता अग्नि है। वेद का पहला शब्द 'अग्नि' है। आर्य अग्निपूजक थे। अग्नि की पूजा हनुमानजी की पूजा है। अग्नि की पूजा राम की पूजा है। राम भी अग्नि है, हनुमान भी अग्नि है। अग्नि की पूजा कृष्ण की पूजा है। अग्नि की पूजा जगदंबा की पूजा है। सभी में अग्नि समाहित है। यज्ञकुंड ये श्लोकबोली का नाम है और धूणो ये लोकबोली का नाम है। अतीत का धूणा, गुणातीत का धूणा, शब्दातीत का धूणा, कालातीत का धूणा। अग्नि की बड़ी महत्त्व की उपासना है। अग्नि आदमी को ऊर्जावंत रखती है।

'रामचरित मानस' में जब बंदर का समूह माँ जानकी की खोज के लिए अभियान करता है तब एक सूत्र दिया गया -

भानु पीठि सेइअ उर आगी।

आप जानकी की खोज करो तब सूर्य को पीछे रखना और अग्नि को आगे रखना। क्या मतलब है? सूरज सामने हो तो आप जल्दी गति नहीं कर पाओगे। आपकी आंखें चकाचौंध हो जाएगी, इसलिए सूरज को पीछे रखना।

आगे अग्नि रखना ताकि उजाला होता चले, प्रकाश होता चले। अथवा तो सिने में आग रखना कि अभी मैं भक्ति की खोज नहीं कर पाया, एक तीव्रता रखना और पीछे सूर्यवंश का सूर्य राम है वो पीठ पर तुम्हारी छाया कर रहा है। उस कृपा को पीछे महसूस करना, बहुत से अर्थ है। तो, श्लोकबोलीमें जिसको यज्ञवेदी कहते हैं, लोकबोली में धूणी कहते हैं। तो, यज्ञकुंड की रज भस्म है और ये भस्म शिवरूप सद्गुरु के अंग छुए तो विभूति बनती हैं। भस्म की रज विभूति है। ये पूरा सनातनी क्रम है।

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती।

यज्ञकुंड की रज भस्म, भस्म की एक रजमात्र प्राप्त हो तो ये विभूति बने, ऐश्वर्य बने। और ऐश्वर्य की रज समता और नम्रता। ऐश्वर्य मिले और समता और नम्रता न आये तो सब निरर्थक! जिसको परमात्मा ऐश्वर्य दे किसी भी रूप में, वो विनम्रता अक्षुण्ण रखे क्योंकि ये ऐश्वर्य की रज है। समता और नम्रता है ऐश्वर्य की रज और समता और नम्रता की रज है अंत:करण की शुद्धि। जितनी भीतर समता और नम्रता होगी इतना अपना अंत:करण शुद्ध होता है और ये शुद्धता की रज है अंदर बैठी परम सत्ता की महसूसी। अध्यात्मजगत में ये परम सत्ता की महसूसी है। अंत:करण में परम सत्ता की महसूसी उसकी रज है। हम सब उनके चरण की रज है।

आप किसी के पीछे उनको पकड़ने के लिए दौड़ो। जिनको आपको पकड़ना हो वह दौड़े, तुम उनके पीछे दौड़ते हो। तत्त्वत: तो दोनों दौड़ते हैं। पकड़नेवाला भी भागता है और जिनको नहीं पकड़ा जाना है वह भी भागता है। और सभी रहस्यों को एक ओर रखें तो दौड़ने के श्रम के अलावा क्या मिला? पूरा 'महाभारत' खेला गया, लेकिन शेष क्या? उदासीनता, निराशा, सर्वनाश। इससे अतिरिक्त कुछ नहीं। लेकिन भगवान क्रिष्न ने हमें बहुत अच्छा उपदेश दिया कि मैं आगे दौड़ता था और कालयवन मेरे पीछे दौड़ता था। कालयवन ऐसा मानता था कि मैं क्रिष्न को पकड़ता हूं! काल मेरे पीछे दौड़ता था और मैं उनके आगे दौड़ता था, लेकिन मैं जगत को कहता था कि काल के पीछे मत दौड़ना। काल के आगे दौड़ना। इस जगत में बुद्धपुरुष समय के आगे चले हैं। इसलिए कुछ व्यक्ति सौ-दोसौ साल बाद पहचानी गई है। काल के पीछे दौड़ते हैं वो काल की परछाई है, कालाधीन है।

कल एक प्रश्न आया था, ''क्रिष्न एक ही पूर्णावतार? दूसरा कोई नहीं?'' सब अवतार पूर्ण है, लेकिन एक-एक वस्तु में। क्रिष्न सभी वस्तु में पूर्ण है। कोई त्याग में पूर्ण है, कोई अपरिग्रह में पूर्ण है। कोई मौन में पूर्ण है, तो नृत्य में पूर्ण नहीं। त्याग में पूर्ण है, तो हंसने में नहीं। क्रिष्न चारों ओर से पूर्ण है। इसलिए इस देश की प्रज्ञा ने उनको पूर्ण पुरुषोत्तम कहा है। वह नाचने में पूर्ण, भागने में पूर्ण, भगाने में पूर्ण, सोने में पूर्ण, जागने में पूर्ण, ख्वाब में पूर्ण, सुषुप्ति में पूर्ण, वामन में भी पूर्ण और विराट में भी पूर्ण; नर में पूर्ण, नारी में पूर्ण; रास में पूर्ण और महारास में भी पूर्ण, महाविनाश में भी पूर्ण। क्रिष्न प्रेम का विग्रह है और प्रेमपूर्ण है।

तो, यज्ञ की रज है भस्म, भस्म की रज है विभूति, ऐश्वर्य की रज है समता और नम्रता। समता और नम्रता की रज है भीतर रही महासत्ता का थोड़ा अनुभव। उनकी रजमात्र कृपा का अर्थ है, 'सकल लोकमां सहुने वंदे।' सब में हरिदर्शन। और उनकी रज है रागद्वेषमुक्त चित्त में पूर्ण का अनुभव। परिपूर्ण की महसूसी वो उनकी रज है।

तुलसी गुरु पराग की चर्चा करते हैं। अंगूठा, पहली उंगली, दूसरी उंगली और तीसरी उंगली के बीच

की जगह में जो रज संगृहीत होती है वह पराग है। चरण की उंगलियां ये कमल की पंखुलियां है। उसमें संगृहीत आरक्षित रज जिसको पराग कहते हैं। जहां भी गोस्वामीजी पराग लिखेंगे आगे कमल लिखेंगे ही।

गुरु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई।

'बालकांड' की गुरुवंदना में रज को सुकृत कहा है वो ही 'अयोध्याकांड' में शब्द, लेकिन दो शब्द ओर लगाया, 'सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई।'

गुरु चरणकमल की पराग सत्य है। बहुत प्यारी उद्घोषणा। जीवन में थोड़ा सत्य भी काम कर देता है। स्वल्प सत्य, रजमात्र। थोड़ा-सा सत्य भी तार देता है। सूरज की एक किरण प्रकाश देती है। गुगळ की एक कलि से पूरा मंदिर सुगंधित होता है। थोड़ा-सा लोबान डालो और दरगाह महकती है। यह देश में ये सब वस्तु क्यों आई? सांज होते ही धूप-दीप करो। ये क्या है? मंदिरों में ही नहीं, सभी के घर में भी होता है। धूप-दीप हम सबने सहज स्वीकारी हुई वस्तु है। अंधेरा हो उससे पहले हमें उजाले की आवश्यकता है। और दूसरा, हम सुगंध के सेवक है। हम प्रकाश के सेवक है। दीप यानी प्रकाश करो और धूप यानी खुश्बू फैलाओ। नैवेद्य की शक्ति न हो तो कोई बात नहीं। हरि भाव का भूखा है। भूखे को भोजन कराओ, अनाथ को आश्रय दो वह धूप-दीप-नैवेद्य है। निदा फ़ाजली साहब का शे'र है -

बच्चा बोला देखकर मस्जिद आलीशान,
अल्लाह तेरे एक को इतना बड़ा मकान?

प्रत्येक धर्म का महारंभ एक-एक सूत्र में हुआ। सनातन हिंदु धर्म का महारंभ यज्ञ। यज्ञ बहुत विशाल अर्थ में भारतीय सभ्यता का परिचय है। इस्लाम धर्म का महारंभ होता है जेहाद से। जेहाद का अर्थ दिल्ही से पधारे हुए मौलाना साहब ने किया। और दूसरा है खुदा की बंदगी। सबका अपना-अपना महारंभ है। अपरिग्रह और देरासरजी जैन विचारधारा का ध्यान, निरंतर ध्यान और भिक्षावृत्ति भोजन ये बौद्धों का महारंभ है। एक ओमकार-सतनाम गुरुनानकीय परंपरा का महारंभ है। ऐसे आरंभ करते-करते महापुरुष अनारंभ में चले जाते हैं। उसको 'गीता' कहती है, 'सर्वारंभ परित्यागी।' तुलसी कहते हैं, 'अनारंभ अनिकेत अमानी।' प्रत्येक विचारधारा का अपना-अपना महारंभ है। कालांतर में महारंभ का अर्थ गलत होता जाय और फिर घर्षण पैदा होता है।

तो बाप, गुरुचरणरज सत्य है, सुक्रित है, पुण्य है और सुख है; सुख की सीमा है। गुरु की पदरज कई प्रकार के सुख देती है। कई लोगों को प्रभाव का सुख होता है, लेकिन वह सापेक्ष है, प्रभाव का दु:ख भी होता है। जगत में बहुत प्रभाव व्याप्त हो तो अगर हम घमंडी हो तो सुख मिले, लेकिन साधुहृदय हो तो प्रभाव दु:ख भी दे, कीर्ति दु:खी करे।

दूसरा सुख है स्वभाव का। हमें हमारे स्वभाव का सुख होना चाहिए। आपको आपका स्वभाव पसंद होना चाहिए। जब तुम्हें तुम्हारा स्वभाव पसंद न आये तब बहुत सत्संग करना। गुरु का स्वभाव ऐसा होना चाहिए कि आश्रित को ऐसा लगे कि ऐसा दूसरा गुरु हो सकता ही नहीं। यह स्वभाव का सुख है। इस तरह कई लोगों को अपने अभाव का सुख है। मेरे पास कुछ नहीं, उसका सुख होता है अकिंचन लोगों को, फ़कीरों को।

अलग ही मज़ा है फ़कीरी का अपना,
न पाने की चिंता, न खोने का डर है।

दीक्षित दनकौरी का शे'र है। अपने जैसे संसारियों को अभाव का दु:ख होता है। बाप, गुरुचरण की रज सुख की सीमा है। और अंतिम सत्य जिसको माना जाय, तुलसी ने लिखा है -

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।
परस कि होइ बिहीन समीरा।।

भीतर के सुख के बिना मन कभी स्थिर नहीं होगा। जिसको गोस्वामीजी निज सुख अथवा स्वान्त:सुख कहते हैं। गुरुपदरज ये अंत:करण की सुखानुभूति की सीमा है। अपनी निजता, अपनी मौलिकता।

कथा का क्रम। गुरु के प्रताप से दशरथजी को चार पुत्रों की प्राप्ति हुई। उत्सव हुआ। गुरुदेव को बुलाकर चारों राजकुमारों का नामकरणसंस्कार हुआ। कौशल्या के पुत्र को देखकर वशिष्ठजी ने कहा, 'यह बालक को देखकर जगत को आराम मिलेगा, विश्राम मिलेगा। इसलिए यह बालक का नाम मैं राम रखता हूं।' राम जैसा ही जिनका रूप, वर्ण, स्वभाव और शील है ऐसे कैकेयी के पुत्र पर हाथ रखते हुए वशिष्ठजी ने कहा, 'राजन्, यह बालक त्याग और प्रेम से जगत को भर देगा। इसलिए मैं उनका नाम भरत रखता हूं। जिनका नाम लेने से जगत में वैरवृत्ति का नाश होगा, वह बालक का नाम शत्रुघ्न रखता हूं।' लक्ष्मण का नामकरण करते हुए वशिष्ठजी ने कहा, 'यह राम के प्रिय पात्र है। सभी सद्गुणों का भंडार है। राम के सिवा जिसके मन में ओर कोई लक्ष्य नहीं है इसलिए इसका नाम मैं लक्ष्मण रखता हूं।'

तुलसी हम सबको बता रहे हैं, राममंत्र का यदि आप जप करते हैं तो पीछे तीन भाईयों का जो नाम है उसका पारमार्थिक अर्थ समझ ले। रामनाम जपनेवाला भरत नाम को समझे। भरत पोषक है, शोषक नहीं। रामनाम जपनेवाला का दायित्व है कि हम समाज का शोषण न करे। हम समाज को पुष्ट करे, समाज को उन्नत बनाये। शत्रुघ्न, जो हरिनाम का जाप करते हैं उसके मन में दुश्मन के प्रति भी दुश्मनी भाव नहीं होना चाहिए, आंतर्-बाह्य विकास करना हो तो। कटुता रखनेवाले प्रति भी कटुता ना रखे। तीसरा, हमारी औकात के अनुसार दूसरों का हम आधार बने। दूसरों को हम उपयोगी बने। पूरा अस्पताल हम न बना पाये, लेकिन कोई मरीज़ को हम सौ-दोसौ की दवा दे सके। अपनी औकात के अनुसार सेवा करे। तभी हमारा हरिनाम लेना सार्थक हो सकता है।

भगवान की बाललीला, कुमारलीला चलती है। गुरु के वहां अभ्यास करने गये, अल्पकाल में विद्या प्राप्त की। एक बार विश्वामित्र पधारे हैं। महाराज दशरथ के पास संपत्ति की नहीं, लेकिन संतति की मांग की, 'हमारे यज्ञ की रक्षा के लिए आप दो राजकुमार हमें दो।' भारत का साधु संपत्ति नहीं, गृहस्थ के पास उसकी संतति मांगता है। दशरथजी ने गुरु के कहने पर अपने पुत्र सौंपे। राम और लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्रजी निकले हैं। रास्ते में ताड़का को निर्वाण दिया। और दूसरे दिन सुबह यज्ञसुरक्षा की। मारीच को लंका की ओर फैंक दिया और सुबाहु को निर्वाण दिया। यज्ञ संपन्न हुआ।

राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ धनुषयज्ञ के लिए पदयात्रा शुरू करते हैं। रास्ते में अहल्या पत्थर की तरह चूप हो कर पड़ी है। गुरुजी ने कहा, ''राघव, ये गौतमनारी के साथ छल हुआ, ये अहल्या पापवश नहीं शापवश है। आपके चरनकमल की चाह कर रही है, आप कृपा करो।'' और भगवान का चरणरज का स्पर्श होते ही एक चैतन्य प्रकट होता है, एक उत्साह प्रकट होता है! भगवान राम को पतितपावन का बिरुद प्राप्त हुआ।

जनकपुर पहुंचे। जनक ने आदर किया। 'सुंदरसदन' में राम-लक्ष्मण, विश्वामित्र को निवास दिया। सायंकाल गुरुआज्ञा पाकर राम-लक्ष्मण मिथिला नगरी का दर्शन करने के लिए निकले। पूरी नगरी राम की रूपमाधुरी में डूब गई। दूसरे दिन प्रभु बाग में फूल लेने गये। वहां जानकी और राम का प्रथम मिलन हुआ है। जगदंबा जानकी बाग में गौरीपूजा के लिए आई है उसी समय एक सखी ने खबर दी, जिसके पीछे पूरा नगर डूबा है वो ही राजकुमार आये है, देख ले। और सखी को आगे करके जानकी राम का दर्शन कर ने निकलती है। राम पुरुष के रूप में सीता है; सीता नारी के रूप में राम है। तत्त्वत: दोनों एक ही है। एक-दूसरों को समर्पित हुए हैं। जानकी गौरी की स्तुति करती है। भक्तिसहित हुई स्तुति सुनकर मूर्ति बोली, हंसी और मूर्ति ने आशीर्वाद दिया।

दूसरे दिन धनुषयज्ञ का समय हुआ। पूरी सभा भरी है। अभिमानी राजाओं खड़े होते हैं। अपने-अपने इष्टदेव को याद करते हैं। लेकिन किसीने गुरु को याद न किया! किसीसे धनुष टूटा नहीं। फिर विश्वामित्र ने राघव को कहा, 'धनुष तोड़ो।' तब गुरु को प्रणाम करते हुए रामजी खड़े हुए और क्षणार्ध में भगवान ने धनुष के टुकड़े किये! धनुषभंग हुआ। जानकी ने जयमाला पहनाई। परशुराम आये और क्रोधित हुए। परशुराम को जब राम का प्रभाव समझाया तब राम की शरण ली, स्तुति की। बाद में परशुराम अवकाश प्राप्त कर गये।

दूत अयोध्या गये। दशरथजी बारात लेकर आये है। मागशीर्ष सुद पंचमी है, गोरज बेला है, भगवान राम स्वर्ण सिंहासन पर बिराजमान है। विवाह संपन्न हुआ। साथ ही ऊर्मिला लक्ष्मणजी को, श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न को सौंपी गई और मांडवीजी के साथ भरतजी का विवाह हुआ। चारों पुत्रीओं को जनक विदा देते है। सब अयोध्या आते हैं। कुलरीति, लोकरीति संपन्न होती है। मेहमान विदा हुए। आखिर में जिनकी कृपा से यह सब हुआ वह विश्वामित्रजी ने रजा मांगी। और एक सद्गुरु की विदा होती है तब पूरा राजपरिवार रो ऊठा। तुलसीदासजी ने पंक्ति लिखी है -

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

संत को विदा दी गई। तुलसी ने 'बालकांड' पूरा किया, यह कथा जो गायेंगे वो सीताराम के प्रसाद से यह सुख के सहभागी होंगे।

व्यासपीठ सद्गुरु है, तो उसकी रज है मौन। व्यासपीठ से ऊतरकर मैं मौन हो जाता हूं। कोई अमूर्त बैठा है गादी पर। इसलिए मैंने तो ये गादी समझा ही नहीं। मैंने कई बार कहा है, ये मेरे लिए गोद है। मैं प्रार्थना करूं कि जब-जब आपको समय मिले, थोड़ा मौन रहो। अपने व्यवहार जगत में देखा है, कई लोग बहुत बोलते हैं! अकारण बोलते हैं! 'गीता' ने जिसको दीर्घसूत्री कहा है ऐसा बोलते हैं! मौन हमें सुख देता है। बोलने से बिखर जाते हैं, मौन हमें इकट्ठा करता है।

प्रसन्नतापूर्वक जीना यह भी भजन है

कल प्रश्न था कि, ''प्रसन्नता से हम सुबह जागे, प्रसन्नता से हम नास्ता करे, प्रसन्नता से हम अपने दफ्तर में, खेत में, हमारे कार्यक्षेत्र में जाये, प्रसन्नता से अपना कार्य करे। प्रसन्नता से अपनी ड्यूटी पूरी होने पर अपने घर आये। प्रसन्नता से बीबी-बच्चों के साथ बैठे, बातें करे। प्रसन्नता के साथ रात्रिभोजन करे। प्रसन्नता के साथ सो जाये, फिर प्रसन्नता के साथ सुबह में उठे, फिर वो ही दिनचर्या चले, तो क्या ये भजन नहीं है?''

यही भजन है। मैं व्यासपीठ से बोल रहा हूं। इसका मतलब आप जप करो, पाठ करो, ठाकुर सेवा करो, यज्ञ करो, ध्यान करो, योगा करो, जो आपकी रुचि में हो, ये भी है ही, लेकिन आप जरा शांति से सोचे ये सब साधन यदि प्रसन्नता से न हुआ तो क्या हुआ? जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने कहा, 'प्रसन्न चित्ते परमात्म दर्शनं।' व्यक्ति का चित्त प्रसन्न रहे तो उसको परमात्मा का दर्शन होगा, ऐसा लिखा है। प्रसन्नता से की हुई प्रत्येक दिनचर्या, ये पूजा है, ये भजन है, ये रामकथा है, ये गुरुपदरज वंदन है।

मैं एक निवेदन करूं, साधना को जीवन से बिलग मत करो। जीवन ही साधना है। मैं नहीं कहता,

ये जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं -

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचरा प्राणा शरीरं गृहम्।
पूजाते विषयोपभोगरचना, निद्रा समाधिस्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्।

'हे महादेव, मेरे लिए ये सब तेरी आराधना है। हे महादेव, तू मेरी आत्मा है और पार्वती मेरी बुद्धि है।' जगद्गुरु शंकर कहते हैं, 'हम जो कार्य कर रहे हैं ये हमारे सभी सहचर है। ये हमारी साधना के पार्ट है। ये मेरा शरीर, मेरा प्राण, मेरा घर है। मैं संसारी हूं, भोलेबाबा, मैं हंसता हूं, खाता हूं, पीता हूं, विषयों में हूं। मैं इन्द्रियों का सुख लेता हूं, लेकिन मुझे कोई डर नहीं, मुझे कोई ग्लानि नहीं, क्योंकि मेरे विषय-भोग तेरे पूजा की सामग्री है।' है कोई दुनिया का दर्शक ऐसा चिंतन दो-टूक विश्व के मेदान में करे? एक मात्र शंकर है। पूजा मानी क्या? प्रेम। तुम अपने घर के नौकरों से प्यार करो, पूजा है। हर क्रिया के पीछे प्रसन्नता चाहिए। ऐसी प्रसन्नता जिसके जीवन में होती है वो फ़कीरों का फ़कीर होता है। शेर सुनियेगा -

कभी हंसती कभी रोती, कभी लगती शराबी-सी,
महोब्बत जिनमें रहती है वो आंखें ओर होती है।

शायर का नाम है, राज कौशिक गाज़ियाबादी। ये दुनिया तो परमात्मा का रचा हुआ मौल है, इनमें से तुम्हारी रुचि के अनुकूल लो और निकल जाओ। हमारी थाली में कोई परोसे तो भी हम अपनी रुचि के अनुकूल खाते हैं, बाकी छोड़ देते हैं। ऐसे देखो फिलम भी, आनंद करो, मौज करो, लेकिन इनमें से अच्छा कोई संगीत, कोई शब्द, कोई नृत्य ले लो, कचरा फेंक दो।

फिर जगद्गुरु शंकराचार्य ने हद कर दी कि श्रम करते तुम थकित हो गये , सो गये, तो ये तेरी समाधि है। निद्रा को समाधि कहना, एक मात्र कालडी का सपूत निकला जो जगद्गुरु शंकराचार्य बना। है कोई दर्शन जो निद्रा को समाधि कह दे? हमारे यहां तो निद्रा की निंदा की गई है। अवश्य, निद्रा तमोगुण है। लेकिन जगद्गुरु कहते हैं, निद्रा समाधि है। इससे ज्यादा तत्त्वज्ञान क्या है?

शरीरशास्त्र कहता है, बच्चों को ज्यादा निंद चाहिए। माँ के पेट में करीब चौबीस घंटें बच्चा सोता है और जनम लेने के बाद २२-२३ घंटें सोता है, जैसे-जैसे बड़ा होगा निंद कम होगी। सोचो, बच्चे सोते हैं तो बहुत प्यारे लगते हैं। लेकिन आज-कल शिक्षा की पद्धति ही ऐसी हो गई है! नाझिर देखैया का गुजराती में शे'र है -

हुं हाथने मारा फेलावुं तो तारी खुदाई दूर नथी।
हुं मागुं ने तुं आपी दे ए वात मने मंजुर नथी।

एक खुद्दारी होनी चाहिए, परमात्मा के संतान में। जीवन में प्रसन्नता से रहो। यहां जो आनंद है, जी लो। भरपूर जी लो। प्यार और महोब्बत से जीओ। हमारे परम साक्षर साहित्यकार विद्यापुरुष उमाशंकर जोशी बापा कहा करते थे कि एक साल जीना है तो बाजरी बोओ, घउं बोओ। दस साल जीना है तो आम के पेड़ बोओ, लेकिन सो साल जीना है तो आदमी बोओ। कथा इन्सान प्रकट करती है। भगवद्कथा केवल धार्मिक संमेलन नहीं है, ये प्रेमयज्ञ है; और प्रेम न हिन्दु होता है, न मुसलमान होता है। न प्रेम ईसाई होता है, न बौद्ध होता है। प्रेम प्रेम होता है। क्योंकि प्रेम परमात्मा है। जिसस क्राईस्ट ने कहा था, प्रेम ही परमात्मा है। व्यासपीठ कहती है, मैं और आप नव दिन व्यासपीठ सद्गुरु के गर्भ में निवास करते हैं और वहीं से पलकर निलकते हैं। एक इन्सानियत निर्मित हो।

ज्योत से ज्योत जगाते चलो,

प्रेम की गंगा बहाते चलो।

राह में आये जो दीन-दु:खी,

सबको गले से लगाते चलो ...

'रामायण' की एक पंक्ति है। जगद्गुरु भगवान की रज ये भील-कौल-किरात कोई अपने सीने से लगाते थे तो महसूस करते कि, 'रघुकुल मिलन सरिस सुख पावे।' मानों राम ने हमें गले लगाया। बुद्धपुरुष की चरणधूली नेत्रों का अंजन, जीभ का स्वाद, सिर पर रखने से समस्त विभव वश हो जाय।

साधक का एक प्रश्न है कि, ''गुरु के प्राकट्य के समय जो नक्षत्रमंडल होते हैं, उसी समय हमें ज्यादा प्रभावित करेगी कोई बुद्धपुरुष की रज। तो, ऐसी अनुभूति कैसे करे?'' मेरे मन में बहुत स्पष्ट है। ऐसी अनुभूति हमारी कक्षा के अनुसार होती है। एक मात्र छोटी शर्त, चित्त को रागद्वेष मुक्त करो। जब तक चित्त में रागद्वेष है, तब तक कोई बादशाह तुम्हारी चारों और घूम रहा है, फिर भी महसूस नहीं कर पायेंगे। एक वस्तु समझना, तामसता ज्यादा बलवान होती है। देवताओं से ज्यादा असुर बलवान होते हैं। संस्कार से ज्यादा विकार बलवान होते हैं। वो अच्छी बातों को रोके हुए है। एक लाठी को तोड़ना मुश्किल है, क्योंकि ये तामसी है, ये दंड का प्रतीक है, उसको तोड़ना मुश्किल है। लेकिन सितार, वीणा, वायोलीन, सारंगी वे सत्त्व है, उसको एक मिनिट

में तोड़ सकते हैं। सत्त्व ऋजु होता है, तम बलवान होता है। केवल बलवान होना पर्याप्त नहीं। आदमी में बल का विवेक होना जरूरी है। इतना कौरव कुल का नाश होने के बाद दुर्योधन भागकर जल में छिप गया था। उस मायावी जल से दुर्योधन को निकालना मुश्किल था, तब भगवान क्रिष्न ने कहा, माया का आश्रय करे उनको माया से ही मिटाया जा सकता है। और उस समय जब भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध का समय आया, तब भगवान क्रिष्न से पूछा गया कि ये दोनों बलवान है, लेकिन उसमें श्रेष्ठ कौन है? क्रिष्न कहतें हैं, दोनों बलवान है, लेकिन भीम के पास केवल बल है, दुर्योधन के पास कला भी है। ये आदमी भीमसेन को जीत लेगा।

तो बाप, प्रसन्नतापूर्वक जीना ये भजन है। और गुरु के इस मूलतत्त्व की महसूसी हमें न हो तो इसका मतलब कोई रागद्वेष का कवच पहनकर हम खड़े हैं। निंदा-इर्ष्या छोड़ो। महादेव के कहने पर गरुड की मूढ़ता मिटी और गरुड एक बुद्धपुरुष के आश्रम में पहुंचा। जितना-जितना आश्रम के करीब गया, उनकी सभी बीमारियां खत्म होने लगी थी। कहते हैं जिस लोहे पर जंग लगी हो उस लोहे को लोहचुंबक की असर नहीं होती। ऐसा नहीं लगता कि हमें भी कहीं न कहीं जंग लगी है! हम सब पर कोई लवलेश कृपा काम कर रही है। जितनी कमजोरियां कम होगी, इतना हमारा जो कोई बुद्धपुरुष होगा, ज्यादा निकट महसूस होगा।

तुलसीजी कहते हैं, हम जैसे संसारियों के लिए देश, कोष, परिजन, परिवारु। चार भाग में हमारे जीवन को विभाजित किया। हमारा देश। हमारा कोष, हमारी संपदा, हमारी निधि। परिजन का अर्थ होता है कुटुंबीजन, रिश्तें-नातें, मित्र सब ये तीसरा स्थान और चौथा परिवारु जो हमारा छोटा-सा परिवार हो। हम जैसे संसारियों के लिए चार वस्तु होती है। हमारा देश; देश राष्ट्र भी होता है, छोटा-सा प्लोट, छोटा-सा मकान, हम जहां रहते हैं ये हमारा देश है, हमारा ठिकाना। स्थावर-जंगम हमारा भंडार, परिवार के पालन के लिए, भविष्य के इन्तजाम के लिए जो हम करते रहते है ये हमारा कोष। परिजन; तीसरा, हमारे रिश्तेदार, सगे-संबंधी ये सब और चौथा हमारा छोटा-सा परिवार।

हमारे घर को कोई आग न लगाये, हमारी बचत को कोई चुरा न ले। हमारे जो संबंध होते हैं उसको कोई बिगाड़ न दे। और हमारा छोटा-सा परिवार हो उसमें कोई ज़हर ना घोल दे; कलह, पैदा न करे। तो, 'रामचरित मानस' में कहा गया है इन चारों की सुरक्षा हमें नहीं करनी है, ये सब गुरु के चरणरज की जिम्मेदारी है। नितांत शरणागतों के लिए लिखा है। तो, हमें क्या करना है? तुलसी कहे, सब छोड़ दो, तुम्हें केवल इतना ही करना है -

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी।

पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।

अब उसका आध्यात्मिक अर्थ। देश यानी हमारी साधना की स्थिति। हम कौन-से मुकाम पर पहोंचे है? बंदगी के कौन-से सोपान में है? ज्ञान की सात भूमिका में हमारा सच्चा पता क्या है? या तो नव प्रकार की भक्ति में कौन-से सोपान पर हमारा मुकाम है? वह हमारा देश। हमारी संपदा यानी कृपा से हमें प्राप्त वैराग्य, विवेक आदि षड्संपदा; हमारी दैवी संपदा। तीसरा, जगत के सम्बन्धों का निर्वहण मुझे और आपको करना होगा, लेकिन परमात्मा के साथ हमारा नाता, ठाकुर साथ हमारी रिश्तेदारी। ठाकुर बहुमुखी है, उनका आयाम बहुत बड़ा है। वो अनेक रूपरूपाय है। हमने उनको मित्र माना हो तो मित्राष्टक समझे हैं? गुरु माना

हो तो गुरुष्टक समझे हैं? शंकर माना हो तो रुद्राष्टक समझे हैं? योगी माना हो तो अष्टांग समझे हैं? परम तत्त्व के साथ साधक जो न्याय से जूड़े हो वह संबंध निभाया है? तुलसी कहते हैं, 'तू दयालु है, मैं दीन हूं। तू दानी है, मैं भिखारी हूं। यह दूसरा संबंध, मैं परम पातकी हूं, तू पापविमोचक है, तू पतितपावन है।

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।।
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो।।

मेरे जैसा कोई आर्त नहीं, तेरे जैसा कोई आर्त से मुक्त करनेवाला नहीं। मेरे और तेरे अनेक रिश्तें है। जो पसंद आये वो मेरे साथ जोड़ना। और जो जोड़ेगा उसको निभाने की जिम्मेदारी तेरी होगी, मैं निर्भार हो जाउंगा।

अध्यात्मजगत में हमारा परिवार कौन? ज्ञान हमारा बाप है; भक्ति हमारी माँ है। इससे द्वारा आते सुलक्षण हमारे बच्चें हैं। केवल प्रपत्ति यही हमारा पातिव्रत्य है, यही हमारी शरणागति है। ये हमारा एक आध्यात्मिक छोटा परिवार।

तो बाप, हम जैसे संसारियों के लिए रज के सिवा कोई उद्धार नहीं है। लवलेश कृपा। दहशत से कुछ नहीं मिलता, मेहनत से कुछ मिलता, रेहमत से सब कुछ मिलता है। गुरुपदरज की बहुत बड़ी गहरी महिमा है। और ऐसा गुरु है, क्रिष्नं वन्दे जगद्गुरु। ऐसा गुरु है भगवान महादेव, ऐसा गुरु है भगवान रामभद्र, ऐसा गुरु है, 'जय जय जय हनुमान गोसांई। कृपा करौ गुरुदेव की नांई।।' ऐसा गुरु है माँ। इसलिए उपनिषद का क्रम माँ से शुरू होता है, 'मातृदेवो भव।'

कथा का थोड़ा दौर। 'बालकांड' पूर्ण हुआ। 'अयोध्याकांड' के आरंभ में तुलसीजी ने 'अयोध्याकांड' के सुख का बहुत वर्णन किया है। जानकीजी पुत्रवधू के रूप में पधारी है इसलिए अयोध्या का आनंद, सुख-समृद्धि रात-दिन चौगुनी बढ़ने लगी। हद से ज्यादा सुख भी अच्छा नहीं। दशरथजी ने स्वाभाविक दर्पण में देखा। मुकुट को तिरछा देखा और ठीक किया। मेरी व्यासपीठ ने जिज्ञासा की है और उसको सुलझाने का प्रयत्न भी किया है। दर्पण वह दर्पण नहीं, तेरा मन वही दर्पण है। जब जीवन में चारों ओर से जयजयकार होता हो, पद, प्रतिष्ठा, पैसा सब मिले तब समझदार आदमी को अपने मनरूपी दर्पण में देख लेना चाहिए कि मुझे जो इज्जत मिलती है उसके योग्य में हूं या नहीं। दशरथजी ने आत्मदर्शन किया। निवृत्ति का निर्णय आया। सफ़ेद बाल बूढ़ापे का प्रतीक है। वो कहता है कि अब निवृत्ति ले ले। बूढ़ापे ने दशरथजी को चेतावनी दी कि राजन्, बूढ़ापा आ गया है। अब निवृत्ति का मार्ग ले लो। दशरथजी वशिष्ठजी के पास जाकर प्रार्थना करते हैं, 'बापजी, मेरी इच्छा है कि मैं राम को राज्य सौंप दूं।' वशिष्ठजी ने कहा, 'राम को राजगादी सौंपनी हो तो उसमें मुहूर्त देखने की जरूरत नहीं। जिस वक्त तुम राजतिलक करो, वही शुभमुहूर्त।' दशरथजी ने निर्णय किया, लेकिन एक दिन की मुद्दत डाली। वह ममता की रात्रि ने बाजी बिगाड़ी!

मंथरा ने अयोध्या का उत्सव देखा और ईष्या और द्वेष के कारण अंदर से आग लगी! राम को कल राजतिलक होनेवाला है। भ्रमित बुद्धि लेकर कैकेयी के महल आती है। कैकेयी प्रसन्न है। लेकिन मंथरा ने कैकेयी की मति बिगाड़ी। कभी भी अधर्म का संग मत करना। क्योंकि वह कब हमारी बुद्धि बिगाड़े और कब हमारे जीवन के उत्सवों में वनवास का दु:खी प्रकरण मिला दे उनका पता नहीं चलता। कैकेयी रीस करती हुई कोपभुवन में चली जाती है। आभूषण फेंककर धरती पर सो जाती है। फिर कोपभुवन में दशरथजी जाते हैं और

घटना घटती है। कैकेयी ने दो वरदान मांगे, भरत को राज्य और राम को वनवास। परिणामस्वरूप राम, लक्ष्मण, जानकी का वनवास हुआ। पूरी अयोध्या साथ चली। तमसा के तट पर पहला रात्रिमुकाम हुआ। दूसरे दिन सुबह लोगों को पता न चले ऐसे राम, लक्ष्मण, जानकी गंगा के तीर पहुंचे। दु:खी प्रजा अयोध्या वापस आई। दूसरे दिन भगवान राम सुमंत को विदाय देते हैं। सामने किनारे जाने के लिए भगवान ने नौका मांगी। केवट प्रभु को सामने किनारे लाया।

प्रभु की पदयात्रा शुरू हुई। गुहराज साथ गया। प्रभु भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पधारे। वहां से दूसरे दिन आगे बढ़े। तापस-मिलन की घटना हुई। और फिर प्रभु यात्रा करते हुए वाल्मीकिजी के आश्रम में पधारते हैं। वाल्मीकिजी चौदह स्थान दिखाते हैं और चित्रकूट का निर्देश करते हैं। राम, लक्ष्मण, जानकी चित्रकूट में निवास करते हैं।

सुमंत अयोध्या पहुंचता है। राम के विरह में दशरथजी ने प्राणत्याग किया। भरतजी आए। क्रोधित हुए। राजा का अंतिमसंस्कार हुआ। भरतजी कहते हैं, 'मैं राज का आदमी नहीं, मुझे राम चाहिए। मुझे सत्ता नहीं, सत् चाहिए। मुझे पद नहीं, पादुका चाहिए।' पूरी अयोध्या को लेकर भरतजी चित्रकूट आए हैं। जनकराजा भी आए हैं। सभा हुई। आखिर भरतजी ने कहा -

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिअ सोई।।

भरत का अद्भुत त्याग! विदाय की बेला आई। भरत ने कहा, हम बिना आधार जी नहीं सकेंगे। और कृपा हुई -

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।

भरतजी ने पादुका को शिरोधार्य की। अयोध्या वापस आए। राजकार्य की व्यवस्था की। भरतजी ने पादुका को सिंहासन पर रखी। गुरु वशिष्ठजी और माता की आज्ञा लेकर भरतजी नंदिग्राम में तपस्वी के रूप में निवास करते हैं।

तुलसीदास 'अयोध्याकांड' का समापन करते हुए लिखते हैं, सीता और राम के प्रेम से परिपूर्ण भरत का जन्म न हुआ होता तो मुनियों के मन को अगम ऐसे नियम-व्रत का परिपालन कौन करते? तुलसी कहते हैं, भरत न होता तो यह भयंकर कलिकाल में मुझ जैसे सठ को राम सन्मुख कौन करते?

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीयराम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति।।

'अयोध्याकांड' समाप्त।

जब तक चित्त में रागद्वेष है, तब तक कोई बादशाह तुम्हारी चारों ओर घूम रहा है, फिर भी महसूस नहीं कर पायेंगे। एक वस्तु समझना, तामसता ज्यादा बलवान होती है। देवताओं से ज्यादा असुर बलवान होते हैं। संस्कार से ज्यादा विकार बलवान होते हैं। एक लाठी को तोड़ना मुश्किल है, क्योंकि ये तामसी है, लेकिन सितार, वीणा, वायोलीन, सारंगी वे सत्त्व है, उसको एक मिनिट में तोड़ सकते हैं। सत्त्व ऋजु होता है, तम बलवान होता है। केवल बलवान होना पर्याप्त नहीं। आदमी में बल का विवेक होना जरूरी है।

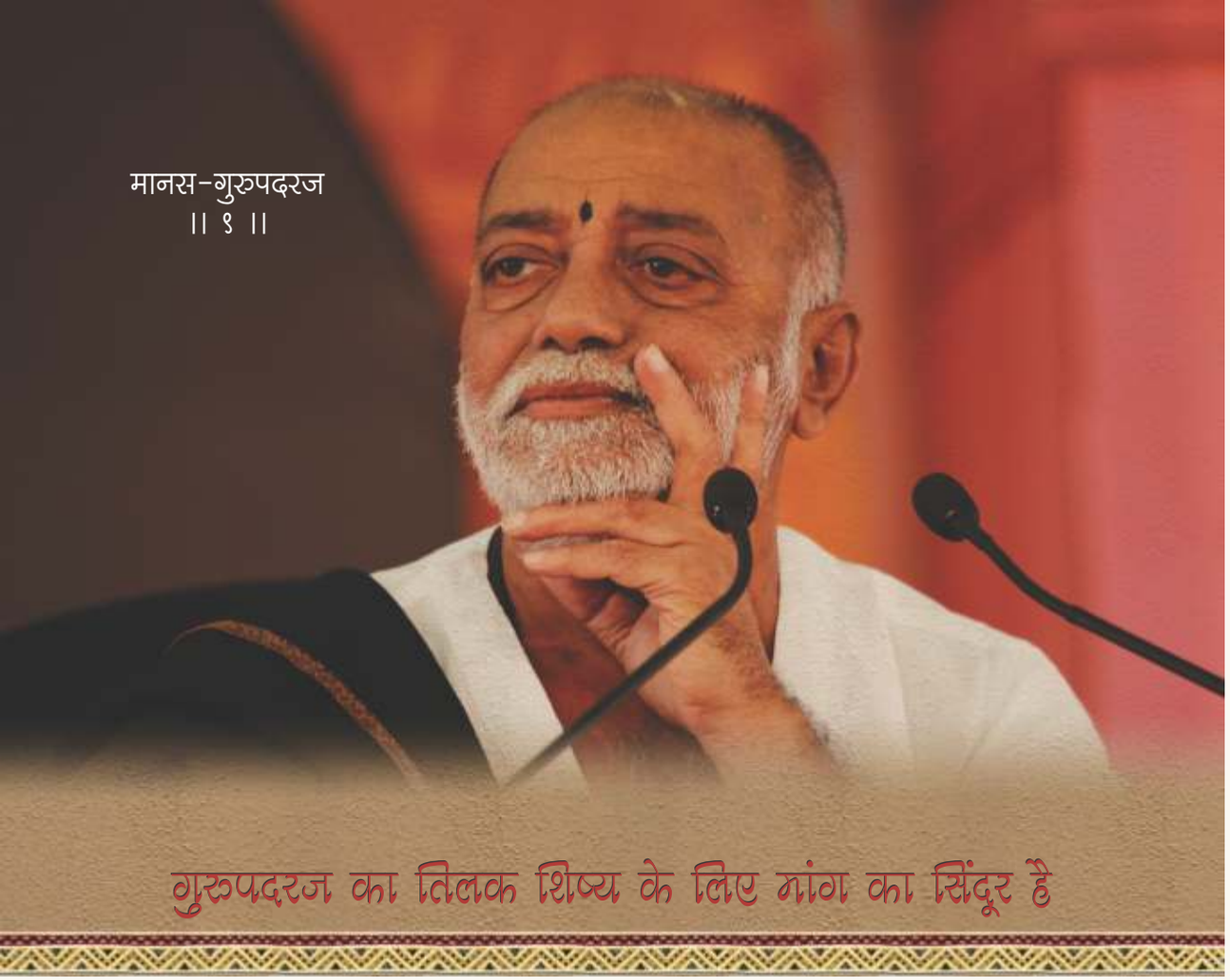

मानस-गुरुपदरज
।। ६ ।।

गुरुपदरज का तिलक शिष्य के लिए मांग का सिंदूर है

आज विराम का दिन है। आखिरी सूत्र -

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन रज सेवा।।

'रामचरित मानस' के 'अरण्यकांड' में एक वचन लक्ष्मणजी बोले। गोदावरी की पवित्रधारा पर पंचवटी में भगवान निवास कर रहे हैं। मौका मिलते ही लक्ष्मणजी ने प्रणाम करके कहा, ठाकुर, 'मेरे जगद्‌गुरु, हे मेरे देव, मुझे ऐसा समझकर आखिर कुछ बता दो कि मैं सब कुछ छोड़कर चरण की नहीं, चरणरज की सेवा करूं।' ये बिलकुल शिखर की चर्चा है।

गुरुपद, गुरुपदकमल, गुरुपदरज, गुरुपदनखरजज्योति सबकी बातें गोस्वामीजी ने अपने साथ रखी है। लेकिन यहां लक्ष्मणजी मांग रहे हैं कि मैं सबकुछ छोड़ दूं। अब लक्ष्मणजी ने छोड़ने में कौन कमी रखी है कि वो आदमी कहता है, मैं सब कुछ छोड़ दूं? ये पूरा प्रसंग मनोवैज्ञानिक बन जाता है। एक नये दर्शन का उद्‌घाटन करता है।

लक्ष्मणजी ने निंद छोड़ी, नारी छोड़ी, माँ-बाप छोड़े, राज छोड़ा, वैभव छोड़ा, सुख-सुविधा छोड़ दी। राम की कीर्ति की धजा फरकाने के लिए ये आदमी दंड बनकर लोगों की आलोचना का भोग बनता रहा। आश्रित की मनोगति का ये विज्ञान है। सब होते हुए हमें महसूस होने लगे कि अब हमें किसीको छोड़ना नहीं है, लेकिन सबसे गुजर जाना है। 'सब तजि' का मतलब कोई छोड़ना बाकी नहीं रहा था। लेकिन उनका मन आज ओर उपर जाना चाहता है।

'रामचरित मानस' में तीन प्रकार के जीवों की चर्चा है। हम गुरुचरणरज के उपासक भी तीन प्रकार के होते हैं - विषयी, साधक और सिद्ध। चरणरज की कौन चाह नहीं करता, कौन है अभागा? हम जैसे सांसारिक, मायिक लोग गुरुचरणरज तो चाहते हैं, चरणरज की महिमा सुनते हैं, अच्छा लगता है, लेकिन हम विषयी होने के कारण विषयी भाव से की गई गुरुपदरज सेवा कभी सुख देती है, कभी दुःख देती है। आपके जो कोई बुद्धपुरुष हो, गुरु हो इसमें यदि आप मानते हो तो, कोई दबाव नहीं। साधुसमाज उस पावनी परंपरा को गतगंगा कहते हैं। ये जड़ नहीं है, प्रवाह है। गुरु उपासक किसको जीतने निकले? किसीको जीतना नहीं, जुड़ जाना। रिसाना क्या? रंग जाना।

गुरुपदरज का तिलक शिष्य के लिए मांग का सिंदूर है। दुनिया के समस्त गुण उसके वश हो जाते हैं। और ऐसा लिखा है -

किएँ तिलक गुन गन बस करनी।

तो, हम विषयी है। हम विषयी भाव में है इसलिए गुरुरज अच्छी लगती है, रज पर प्रवचन अच्छा लगता है, हम अंदर से घोये जा रहे हैं, फिर भी विषयी स्वभाव के कारण गुरुरज पाने के बाद भी कभी हम सुखी होते हैं, कभी दुःखी होते हैं। कारण हमारा विषयीपना। तो बाप, विषयीभाव से गुरु की उपासना सुख भी देती है, दुःख भी देती है।

अब हम गुरुपदरज के लिए धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं तो एक दूसरा पड़ाव, मुकाम आता है, वो है साधक। साधक गुरुचरणरज का अनुभव करता है तो उसको कभी सुख, कभी दुःख नहीं होता; सुख-दुःख समान हो जाता है। मेरी समझ में हरिकृपा और हरिइच्छा जो 'रामायण' के आधार पर एक सूत्र घूम रहा है दुनिया में कि अपनी इच्छा के अनुकूल हो जाय तो हरिकृपा, अपनी इच्छा के अनुकूल ना हो तो हरिइच्छा। बीच में हम अपनेआप को डाले ही क्यों? लेकिन साधक जब गुरुपदरज का आश्रित हो जाता है तब केवल गुरुकृपा ही बचती है, सब सम हो जाता है। समानुभूति हो जाती है। वो सुख-दुःख की परिभाषा में नहीं जायेगा। आदमी जितना बड़ा इतना सुख भी बड़ा, दुःख भी बड़ा। ये गणित है। लेकिन साधकभाव के पड़ाव पर यदि हम गये तो दोनों सम हो जाता है।

तो बाप, लक्ष्मणजी कहते हैं, मैं सब कुछ छोड़कर अब केवल चरणरज की सेवा करूं। और मेरा भी एक अपना 'रामायण' है। उसके मुताबिक कहूं तो लक्ष्मणजी संजीवनी से जाग्रत नहीं हुए थे। औषधि निमित्त थी। लक्ष्मणजी पहली बार इन्द्रजित से मूर्छित हुए तो कितना बड़ा आयोजन हुआ? वैद को लाया गया, प्रार्थना की, वैद ने कहा, 'नामगिरि औषधि, संजीवनी औषधि ले आओ।' शर्त डाली, सूर्योदय पहले। ये पूरी लंबी यात्रा हुई। परमात्मा के बारे में लिखा है कि जो त्रिभुवन को एक क्षण में मारता है, दूसरी क्षण त्रिभुवन

प्रकट कर देता है। लक्ष्मण के लिए दवा लाओ, वैद बुलाओ, ये क्या नाटक है? लेकिन सब किया। परमात्मा भी मानता है कि होगा तो मेरी कृपा से ही काम लेकिन निमित्तों का अनादर नहीं करना चाहिए। इतनी बड़ी प्रक्रिया से गुजरे और उसके बाद लक्ष्मणजी जाग्रत हुए। और फिर दूसरी बार लक्ष्मणजी मूर्छित हुए। और मूर्छित लक्ष्मणजी को राम के चरण में जब शिबिर में लाया गया तो भगवान ने कहा, 'लक्ष्मण, तू तो काल को भी खा जाता है, उठ।' ऐसा कहा तो लक्ष्मण खड़ा हो गया। तो पहले क्यों सबको तुडवा दिया? परमात्मा कहते हैं, काम कृपा से होगा, लेकिन कर्म करो, पुरुषार्थ करो, होगा सब प्रसाद से। इसलिए भगवान सद्गुरु तुलसीदास नखज्योति की वंदना करते हैं -

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।

सद्गुरु के पग की नख को मनिगन कहा है। ये दस मणि है। ये 'रामचरित मानस' किताब नहीं है, तुलसी का कलेजा है। मुझे कहने दो कि संजीवनी आई, रखी। हमारे यहां आयुर्वेद में कोई भी औषधि किसी के साथ दी जाती है। मध के साथ, दूध के साथ या तो पानी के साथ पीना पड़ता है, सीधा नहीं। तो, वैदराज ने औषधि तो ली। फिर सोचा। किसके साथ पीलाउं? हनुमानजी ने उपाय बताया मुझे दो। राम नंगे पैर थे। उसी समय ठाकुरजी की जो चरण पड़ी थी, वहां से थोड़ी चरणरज ली। औषधि में मिलाई और लखन को पिलाई। और लखन जाग गया। जागा तो लखन को भी अनुभव हुआ कि जो मैंने 'अरण्यकांड' में मांगा था वो आज पूरा हो रहा है।

मैं जब कहता हूं कि ये मेरा दर्शन है, इसका मतलब कोई अन्यथा न ले। जिम्मेवारी मेरी बनी रहे। सच्ची हो, खोटी हो, ये जिम्मेवारी मैं अपने सर लेता हूं इसलिए मेरा कहता हूं। यहां रस चूर्ण द्वारा पिलाया जा रहा है। रस था संजीवनी का और चूर्ण था जगद्गुरु की राम की चरणधूल। गुरुचरणरज की अतुलनीय महिमा है। हमारी अवस्था के अनुसार अनुभूतियां होती है। कपट मुक्त भाव से सेवो।

तो बाप, दायें पैर के पांच नख, बायें पैर के पांच नख, मनिगन ज्योति। गन मानी समूह।

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।

तो कौन ये ज्योति है? अब पहले दायें पैर का समझो। दायें पैर का अंगूठा, उसके नख और मणि का नाम प्रसाद। प्रसाद ये गुरुचरण का पहला नख है। दायें पैर के अंगूठे के पास की उंगली ये गुरुपूजा, उसके पास की उंगली गुरुसेवा, उसके बाद का चौथा नख गुरुवचन। और पांचवीं टचली उंगली गुरुज्ञान। यह दायें पैर के पांच नख-गुरुप्रसाद, गुरुपूजा, गुरुसेवा, गुरुवचन और गुरुज्ञान।

बायें पैर की पांच नखज्योति। उसमें पहली नखज्योति गुरुमंत्र, दूसरी नखज्योति गुरुग्रंथ। कोई 'रामायण' को माने तो वह गुरुग्रंथ, कोई 'भागवत' को माने तो वह गुरुग्रंथ। अपने-अपने गुरु ने दिया हुआ ग्रंथ वह बायें पैर की दूसरी उंगली के नख का मणि है। तीसरी नख की ज्योति है गुरुआसन। गुरु जहां बैठता हो, उसका एक प्रकाश होता है। काठियावाडी भाषा में उसको आखडी कहते हैं। बायें पैर के अंतिम दो नख अद्भुत, अलौकिक है। अपनी चेतना नीचे जलदी जाती है, उपर कम जाती है। चेतना का लक्षण है नीचे जल्दी जाना। इसलिए ही साधुसंतों, गुरुजनों, लकड़े की पादुका पहनते हैं; क्योंकि लकड़ा अवाहक है। चेतना को धरती में जाती

हुई रोकने का ये प्रयोग है। अथवा दर्भासन क्यों? दर्भासन चेतना को धरती में जाती हुई रोकता है। ये वस्तु अवाहक है। तो, गुरु आसन ये चौथे नख की ज्योति है। पृथ्वी में समाहित होती हुई रुक गई दीप्तज्योति, ये चौथा मुकाम है। गुरु का चैतन्य ये मनिगन ज्योति है। और मेरा अनुभव कहता है कि बायें पैर की अंतिम टचली उंगली ये गुरु की नेत्रमणि है।

गुरुकृपा से योग के रहस्य जो साधक समझे हैं उसकी चेष्टायें जाहिर नहीं होती, वह अकेला बैठा हो तब उनके चरण के साथ उनकी गुफ्तगू होती है। तो, लक्ष्मणजी क्यों कह रहे हैं कि, 'सब तजी करु चरण रज सेवा।' सब छोड़कर गुरुपदरज की सेवा करने की जब बात है तब है, अब मेरे गुरु का समग्र जीवन का जो सार सूत्र है इस रज को लेकर मैं समाज मैं उनकी कृपा को बांटुं। बस, अब मेरा ये काम।

मेरा काम क्या है? मैंने जो गुरु की रज से पाया वो बांट रहा हूं। मैं यही करता हूं। न थकता हूं, न कभी थकनेवाला हूं। सबकुछ छोड़कर गुरु के चरणरज की सेवा यही तो है। 'आग्या सम न सुसाहिब सेवा।'

मुझे मेरे दादाजी ने कभी भी कथा करने को नहीं कहा था। लेकिन फिर उनकी शारीरिक स्थिति बहुत समझा सके ऐसी नहीं थी, तब मेरा आखरी पाठ चल रहा था। तब उनके संकेत से मैं समझा था कि, 'बेटा, अब जाओ।' वह जाने का संकेत पूरी दुनिया में कथा का संकेत था। यह चरणरज की अंतिम सेवा है। रज की कोई किंमत नहीं, लेकिन अगर पवन कृपा करे तो वो रज आकाश में चली जाय। अगर वो रज को पानी का कुसंग हो जाय तो कीचड़ बना दे। और पवन का पवित्र संग हो जाय तो आकाश में घूमते कर दे।

'उत्तरकांड' में राजाधिराज राघवेन्द्र का राज्याभिषेक हो चूका है। राजाधिराज रामभद्र की स्तुति

करने वेदपुरुष आते हैं। और वेद स्तुति करके रज की महिमा गा रहा है। यहां रज की महिमा वेद में न लिखी गई हो तो भी तुलसी ने वेदपुरुष के पास बुलवाया है। उन्होंने ऐसा कहा है -

जे चरन सिव अज पुज्य रज।
सुभ परसि मुनि पतिनीतरी।

जो चरन शंकर और ब्रह्मा से पूजे जाते हैं वह चरण की शुभरज, जिसका स्पर्श होते ही मुनिपत्नी अहल्या का उद्धार हुआ, वह चरण की महिमा गाते हैं। ऐसी गुरुपदरज की महिमा हम कर रहे थे।

कथा के क्रम में 'अरण्यकांड' में भगवान चित्रकूट से स्थानांतर करते हैं और दक्षिण में गति करते हैं। चित्रकूट से बाहर अत्रिऋषि के आश्रम में भगवान राम, लक्ष्मण, जानकी आये हैं। अत्रि ऋषि ने राम की स्तुति की -

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं।।

वहीं से प्रभु ने आगे यात्रा आरंभ की। शरभंग मुनि मिले। सुतीक्ष्ण के आश्रम में आये। भगवान और मुनि का मिलन हुआ। फिर मुनि ने कहा, 'आप मेरे साथ चले और मेरे गुरु के आश्रम में पधारकर मेरे गुरु को दर्शन दे।' अधिकारी शिष्य अपने गुरु को भी भगवान की प्राप्ति कराते हैं। ये सच्ची गुरुदक्षिणा है। कुंभज ऋषि के आश्रम में सुतीक्ष्ण ले गया। राम और कुंभज मुनि की भेंट हुई। यात्रा आगे चली। रास्ते में जटायु गीध मिला। कबंध नामक राक्षस मिला। उसको निर्वाण दिया और भगवान शबरी के आश्रम में पंपासरोवर के तट पर पहुंचे। प्रतीक्षा की प्रतिमूर्ति है शबरी। शबरी को एक बार उसके गुरुजी ने कहा था कि, 'बेटी, इसी स्थान में रहना। राम तुम्हारे पास आयेंगे।' गुरु के वचन पर भरोसा करके बैठी ये शबरी, आज उसके सपने सच हुए। राम आये उसका तो आनंद शबरी को था ही, लेकिन शबरी को विशेष आनंद वो था कि आज मेरे गुरु की वाणी सफल हुई। गुरु पहले याद आया। 'किस प्रकार आपकी स्तुति करूं? अधम से अधम हूं।' भगवान कहते हैं, 'मैं इन्सान के हृदय का

प्यार देखता हूं।' प्रभु शबरी के सामने नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन करते हैं और शबरी योगाग्नि में अपने देह को समर्पित करके जहां से कभी लौटना न पड़े ऐसी जगा में लीन हो गई। शबरी का उद्धार करके भगवान पंपासरोवर आये। नारद आये। नारद ने भगवान से संतों के लक्षण पूछे कि साधु किसको कहे, आप बताये। साधु के अनन्य गुणों की बात करते तुलसी 'अरण्य' को विराम करते हैं।

'किष्किन्धाकांड' में सुग्रीव और राम की भेंट होती है हनुमानजी के माध्यम से। संत की कृपा से विषयी जीव को प्रभु की मुलाकात करा दी। दोनों की मैत्री हुई। अपनी-अपनी कथायें बताई गई। और फिर सुग्रीव वालि से युद्ध करने के लिए आता है। भगवान वृक्ष के पीछे खड़े हैं। प्रभु ने वालि को निर्वाण दिया। वालि ने अपना पुत्र अंगद राम को सोंप दिया। सुग्रीव को राज्य मिला, अंगद को युवराजपद मिला।

भगवान चातुर्मास के लिए तापसी व्रत के कारण प्रवर्षण पर्वत पर गये हैं। तुलसीदासजी ने अपने ढंग से वर्षाऋतु का वर्णन किया -

दामिनि दमक रह न धन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।।

यहां ऋतु और ऋत का वर्णन है। सुग्रीव प्रभु का नाम भूल गया। ठाकुर ने थोड़ा भय दिखाया। जानकी की खोज की योजना बनी। सभी दिशाओं में भालू और वानरों को सीता की खोज के लिए भेजे हैं और आखिर में दक्षिण दिशा में जामवंत, हनुमान आदि को दक्षिण में भेजे हैं।

भगवान को प्रणाम करके सब निलकते हैं। हनुमानजी सबके पीछे प्रणाम करते हैं। हनुमानजी ने जगत को दिखाया कि माँ की खोज करनी है तो आगे या पीछे रहने का महत्त्व नहीं। कभी-कभी पीछे रहना फ़ायदाकारक है। भगवान ने मणिमुद्रिका हनुमान को दी।

आखिर जामवंत ने कहा, 'हनुमानजी आपका अवतार तो रामकार्य के लिए है।' और रामकार्य के लिए मेरा अवतार है, सुनते ही हनुमानजी पर्वताकार हो गये। 'जामवंत, मुझे बताओ, मुझे लंका में जाकर क्या करना है? जामवंत ने कहा, 'माँ को निशानी देना। उसकी निशानी लाना, फिर रघुनाथजी सेना लेकर जायेंगे।' हनुमानजी तैयार होते हैं। 'किष्किन्धाकांड' पूरा हुआ। 'सुन्दरकांड' के आरंभ में -

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

श्री हनुमानजी ने समंदर लांघकर लंका में प्रवेश किया। रात्रि का समय। घर-घर मंदिर-मंदिर जानकी की खोज करे। रावण का अतिविचित्र भवन, दशानन को सोया पाया। कहीं जानकी न मिली। खोजते-खोजते हनुमानजी एक भवन के पास आते हैं वहां देखा कि हरिमंदिर बिलग है। तुलसी का क्यारा है। हनुमानजी प्रवेश करते हैं। रात्रि का समय, उसी समय विभीषण जागता है। दो रामभक्त मिले। हनुमानजी ने विभीषण को कहा, 'माँ जानकी की युक्ति बताओ।' भक्ति कि जुक्ति कोई संत बताये। और जुक्ति मिल जाय तो भक्ति बहु सरलता से प्राप्त हो जाय।

विभीषण के कहने पर हनुमानजी माँ जानकी तक पहुंचते हैं। बीच में रावण आदि आ जाते हैं। और हनुमानजी मुद्रिका डालते हैं। माँ जानकी के हाथ में रामनाम अंकित मुद्रिका आती है। हनुमानजी ने संदेश दिया कि मुद्रिका मैं लाया हूं। माँ ने आशीर्वाद दिये।

हनुमानजी को भूख लगी। फल-फूल खाये। अक्षयकुमार को मार दिया। इन्द्रजित गया। कुपित रावण ने हनुमानजी को मार देने का हुकम दिया। विभीण ने रावण को कहा, 'दूत को मारा न जाय, राजनीति मना कर रही है। ओर कोई दंड कर सकते हो। मृत्युदंड नहीं।' मंत्रीओं ने कहा, 'बंदर को अपनी पूंछ पर बहुत प्रीत होती है। पूंछ जला दी जाय।' पूंछ जलाई गई। लघु रूप लेकर हनुमानजी कूदकर अटारी पर चढ़ गये। और विभीषण का घर छोड़ पूरी लंका में आग लगाई। श्री हनुमानजी समंदर में आग को समाप्त कर के माँ के पास आये। माँ ने चूडामणि दिया। हनुमानजी लौट आये। मित्रों को नूतन जीवन मिला। सुग्रीव के पास आये, ठाकुर के पास आये। और जानकी का संदेश दिया। चूडामणि दिया।

प्रभु की सेना समंदर के तट पर आई। इधर विभीषण ने रावण को कहा कि जानकी को लौटा दो। रावण माना नहीं। विभीषण को निकाल दिया। विभीषण राम के शरण में आया। प्रभु ने उसको स्वीकार कर लिया। अब विभीषण प्रभु से कहता है, 'समंदर के तट पर तीन दिन आप उपवास करो। समंदर यदि अपने को कोई मार्ग दे तो हमें बल का कोई उपयोग नहीं करना है।' तीन दिन प्रभु बैठे। समंदर ने कुछ जवाब नहीं दिया। धनुष-बाण लेने की बात हुई इतने में समंदर ब्राह्मण का रूप लेकर मोती का थाल लेकर प्रभु के शरण में आया, 'प्रभु, आपकी सेना में नल-नील नामक बंदर हैं उसके स्पर्श से पत्थर तरेंगे। आप सेतु बनाओ।' प्रभु का जीवन का सूत्र था, 'जोड़ो, तोड़ो नहीं।'

'लंकाकांड' के आरंभ में सेतुबंध बन गया। प्रभु ने कहा, मेरी इच्छा है यहां शिवजी स्थापना करे। रामेश्वरम् में भगवान राम ने भगवान महादेव की स्थापना की। जयजयकार हुआ। लंका में प्रभु ने सुबेल पर डेरा किया। रावण नाचगान में डूबा है। परमात्मा ने अपना करिश्मा दिखाया। मुकुटभंग हुआ है। रावणसभा में राजदूत के रूप में अंगद संधि का प्रस्ताव लेकर जाता है। संधि हुई नहीं। युद्ध अनिवार्य हुआ। धमासाण युद्ध हुआ। एक के बाद एक राक्षसों का निर्वाण होने लगा। आखिर में रावण के साथ युद्ध। प्रभु ने धर्म स्थापना के लिए सुरक्षा के लिए अधर्म और आसुरी वृत्ति के विनाश के लिए इकत्तीस बाण धनुष पे चढ़ाये, दस मस्तक के लिए, बीस भुजा के लिए और इकत्तीसवां रावण की नाभि के अमृत को शोषने के लिए। रावण धरती पर पहली और अंतिम बार 'राम' बोलके पड़ा! राम का विजय हुआ। परमात्मा के चेहरे में रावण का तेज समाया। विभीषण को राजतिलक हुआ। हनुमानजी जानकी को खबर देते हैं। जानकीजी आती है मूलरूप में।

पुष्पक विमान तैयार हुआ। मुख्य साथियों को लेकर प्रभु का विमान लंका से अवध की ओर उड़ान भरता है। सेतुबंध का दर्शन, रामेश्वर भगवान का दर्शन करवाया। हनुमानजी को प्रभु ने अयोध्या जाने को कहा, 'भरत को संभालो, जल्दी खबर करो।' प्रभु का विमान शृंगबेरपुर, केवट ने प्रभु के पैर धोये थे वहां आया। केवट को प्रभु साथ में लेते हैं। 'लंकाकांड' समाप्त।

'उत्तरकांड' के आरंभ में हनुमानजी भरतजी के पास आकर कहते हैं कि, 'राम लक्ष्मण और जानकीजी के साथ सकुशल आ रहे हैं।' प्रभु का विमान सरजु के तट पर ऊतरा। भगवान नीचे ऊतरकर भूमि को प्रणाम करते हैं। सरजु को वंदन करते हैं। बंदरों ने मनुष्यदेह धारण किये। भरतजी प्रभु के चरण में गिर पड़े! परमात्मा ने अपना ऐश्वर्य प्रकट किया और तुलसी ने लिखा, 'अमित रूप प्रकटे तेहि काला।' जिसका जैसा भाव ऐसा राम उसको मिला। राम-लक्ष्मण-जानकी कैकेयी के भवन गये। माँ को प्रणाम किया। वशिष्ठजी ने कहा, 'राम सत्य है। सत्य सत्ता के पास नहीं जायेगा, सिंहासन यहां ले आओ।' दिव्य सिंहासन आया। पृथ्वी को, माताओं को, सूर्यदेव को, दिशाओं को, देवताओं को, गुरुजनों को और पूरी जनता को प्रणाम करके राघव को गुरु वशिष्ठजी ने तिलक किया -

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

छ महिने बीत गये। हनुमानजी को छोड़कर प्रभु ने मित्रों को विदा दी। समय मर्यादा पूरी होने पर जानकीजी ने दो पुत्रों को जनम दिया। रघुवंश के वारसदार का नाम लिखकर तुलसी ने आगे की कथा बंद की। तुलसी चाहते थे कि सीता-राम लोकहृदय में स्थापित हुए। यही छबि जन-जन के दिल में रहे।

आखिर में कागभुशुंडि का जीवनदर्शन है। गरुड ने खगपति भुशुंडि से सात प्रश्न पूछे। सात प्रश्नों के आध्यात्मिक उत्तर दिए। गरुड सद्गुरु को प्रणाम करके हर्षित होकर वैकुंठ गया। बाबा भुशुंडि ने गरुड के सामने कथा को विराम दिया। याज्ञवल्क्य महाराज ने भारद्वाजजी के सामने कथा को विराम दिया कि नहीं, स्पष्ट नहीं। कैलास के शिखर पर बैठे भगवान शिव ने पार्वती के सामने कथा को विराम दिया। और पूज्यपाद गोस्वामी तुलसी ने अपने मन को कथा सुनाने समय आखिर में कहा, 'यह कलिकाल में कोई साधन नहीं है। राम को स्मरो, राम को गाओ। उसकी छोटी-सी कृपा हो गई तो मेरे जैसा मतिमंद आज विश्राम पा रहा है।' तुलसी का अंतिम निवेदन -

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

इन चारों परम आचार्यों की छाया में बैठकर मैं मेरे गुरु की कृपा से रामकथा गा रहा था। मैं भी कथा को विराम देने के अग्रसर हूं। ये कथा विराम की ओर अग्रसर है तब नवदिवसीय इस रामकथा का परिणाम, सुक्रित, फल आओ, हम सब मिलकर मेरा गाया, आपका सुना, सब इन पावन दिनों में जगदंबा भगवती के चरणों में समर्पित कर दिया जाय।

मेरा भी एक अपना 'रामायण' है। उसके मुताबिक कहूं तो लक्ष्मणजी संजीवनी से जाग्रत नहीं हुए थे। औषधि निमित्त थी। लक्ष्मणजी पहली बार इन्द्रजित से मूर्छित हुए तो वैद को लाया गया, वैद ने कहा, 'संजीवनी औषधि ले आओ।' लक्ष्मण के लिए दवा लाओ, वैद बुलाओ ये क्या नाटक है? लेकिन सब किया। परमात्मा भी मानता है कि होगा तो मेरी कृपा से ही काम, लेकिन निमित्तों का अनादर नहीं करना चाहिए। मूर्छित लक्ष्मणजी को राम के चरण में जब शिबिर में लाया गया तो भगवान ने कहा, 'लक्ष्मण, तू तो काल को भी खा जाता है, उठ।' ऐसा कहा तो लक्ष्मण खड़ा हो गया। परमात्मा कहते हैं, काम कृपा से होगा, लेकिन कर्म करो, पुरुषार्थ करो, होगा सब प्रसाद से।

मानस-मुशायरा

बच्चा बोला देखकर मस्जिद आलीशान,
अल्लाह तेरे एक को इतना बड़ा मकान?

– निदा फाजली

उसे किसने इजाज़त दी गुलों से बात करने की?
सलीका तक नहीं जिसको चमन में पांव रखने का!

– मासूम गाज़ियाबादी

अलग ही मज़ा है फ़कीरी का अपना,
न पाने की चिंता, न खोने का डर है।

– दीक्षित दनकौरी

तेरी खुशबू का पता करती है,
मुझ पे एहसान हवा करती है।
मुझको इस राह पे चलना ही नहीं,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।

– परवीन शाकिर

कभी हंसती कभी रोती, कभी लगती शराबी-सी,
महोब्बत जिनमें रहती है वो आंखें और होती है।

– राज कौशिक

द्रोह पाप है पर समाज को ठीक रखने के लिए विद्रोह जरूरी है

'फूलछाब' अवॉर्ड अर्पण समारोह में मोरारिबापू का प्रासंगिक उद्‌बोधन

आज दूसरी अक्टूबर, विश्वमानव का अवतरण इसी दिन हुआ। वह भी सौराष्ट्र में हुआ। महामानव पूजनीय विश्ववंद्य गांधीबापू की परमचेतना को मेरे प्रणाम। आज से तिरानबे वर्ष पहले 'फूलछाब' का अवतरण हुआ। मुझे अधिक प्रसन्नता इसीलिए हुई कि कुंदनभाई ने कहा सात वर्ष के बाद फूलछाब शताब्दी मनाए। इस में मैं भी रहूं। इसीलिए मैं बहुत खुश हुआ। सात साल की ही तो बात है न! यूं भी हमें मरने की क्या जल्दी है। कबीर ने कहा कि परमात्मा करे तो मैं मरुं। तो मुझे एवॉर्ड नहीं मिला पर जीवन हेतु आशीर्वाद मिले हैं। बापु, ये पांच अपने-अपने क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्ति है। उनकी वंदना मैंने की इसका मुझे हर्ष है। श्राद्ध पक्ष में मैं पंचदेवता के सामने श्रद्धा से नतमस्तक प्रणाम करता हूं।

इस रामसभा में कितने सारे महानुभाव बिराजमान है। 'रामसभा' का संकुचित अर्थ नहीं पर राम माने नम में भी न समा सके इस तत्त्व को मैं 'राम' कहता हूं। केवल मूर्ति या चरित्र तो है ही। पर 'रामचरित मानस' में लिखा है, 'पद पाताल सिस अजधामा' जिस

तत्त्व के पांव पाताल में और मस्तक आकाश में है। यह ऐसा परमतत्त्व है। जिसमें से विशेष तेज का प्राकट्य होता है ऐसे तेज का सन्मान करने हम सब एकत्र हुए हैं अत: यह रामसभा है।

अब मैं क्या कहूं? ये पांच एवॉर्ड दिए गए। उन्हों ने समाज सेवा की। मैंने कई बार का हैं सेवा वहीं कर सके जिसे 'हेवा' (स्वभाव) हो। सेवा प्रयास से नहीं होती। वह स्वभाव से होती है। यह सहज स्फूरण है। इन लोगों ने सेवा की मैं प्रणाम करता हूं। कृषि पर्यावरण की बात आति है। अपने-अपने क्षेत्र में कितना बड़ा काम हो रहा है। मेरा मानना है कि जिस प्रवृत्ति में तेज होता है वह कभी छोटी नहीं होती। यह इतनी भीतरी है कि इसी में से बड़ा परिणाम निकलेगा। पर्यावरण की बातों को मैं कथा में ले लेता हूं। बाकी और क्या कहूं? ऐसे उद्योग को नमन करता हूं। 'शिवसूत्र' में एक सूत्र है 'उद्यमो भैरव:' शंकर के पास काल भैरव है, ठीक है। ऋषि ऐसा कहते है कि शिवतत्त्व का सच्चा भैरव तो उद्यम है। पुरुषार्थ है। एक युवा उद्योगपति के उद्यम भैरव को नमन करता हूं। दूसरा साहित्य में काजलबहन मैं जानता हूं वहां तक इनके मन में समाज के प्रति द्रोह नहीं है पर विद्रोह जरूर है। द्रोह पाप है। पर सर्जक के मन में समाज को ठीक रखने के लिए सर्जक के मन में विद्रोह प्रकट होता है। कबीर में प्राकट्य हुआ था। तो कभी द्रौपदी में प्राकट्य हुआ था। यह विद्रोह है। साधु संत में भी आता है पर वह उग्र नहीं होना चाहिए। साधु उग्ररूप धारण करे यह अच्छा नहीं है। साधु उग्र न हो पर इक्कीसवीं सदी का साधु व्यग्र जरूर होता है। यह व्यग्रता इस सोच की है कि इक्कीसवीं सदी में मेरा समाज कहां जा रहा है? 'विश्वकल्याण हित व्यग्रचित्त सर्वदा।' तुलसी का एक वाक्य है। विश्वमंगल के लिए व्यग्रचित्त होना साधु का लक्षण है। मैंने काजल बहन में यह बात देखी है। उनकी यह बेचैनी है पर समाज के लिए यह शगुन है। वे मुझे कह रही थी, बापू, साहित्य में मेरी गिनती नहीं हो रही है। कुछेक भलेन गिने पर उन्हें पूरा गणतंत्र गिनता है। इस रहस्य को वे क्या जाने जो किनारे बैठ छप्प छप्पा किया करे!

अमे समंदर उलेच्यो छे, प्यारा!
नथी मात्र छबछबियां कीधां किनारे,
मळी छे अमोने जगा मोतीओमां,
तमोने फक्त बुद्बुदा ओळखे छे.

सभी अपने-अपने कार्य में डूबे हैं। इस वक्त देश में क्या चल रहा है यह हम सब जानते हैं। शे'र है -

ये जब्र भी देखा है तारीख की नज़रों ने,
लम्हों ने खता की थी, सदियों ने सजा पाई!

दो-तीन क्षण में लिए गए गलत निर्णयों के कारण इतने बरसों तक हमें सजा भुगतने का वक्त आया है। ऐसी परिस्थिति में ये काम छोटे नहीं है। यह विद्रोहभाव, व्यग्रता चाहे गिनेचुने लोग न माने उससे क्या हुआ। ऐसी परिस्थिति में ये कार्य छोटे नहीं है। जो अपनी मति को डेवलप कर प्रजा तक पहुंचाने का अनुष्ठान करना है उसकी बुद्धि में तो ये टिप्पणियां आती ही रहती है। ऐसे साहित्य का सन्मान काजल बहन को मिल रहा है इसका मुझे व्यक्तिगत आनंद है। बाकी साहित्य पर मैं क्या बोलूं? काजलबहन कहती है, 'लेखन मेरा व्यवसाय नहीं, मेरा जीवन है।' तो, साहित्य पर मैं क्या बोलूं?

और गिरनार चढ़ने की बात! मैं तीन बार चढ़ा हूं। मैं सोचता हूं यह लड़का कान्ति मालिया! कैसे चढ़ता होगा? मैं गिरनार के प्रवेशद्वार पर हनुमानजी बैठे हैं वहां तक जाऊं और हनुमानजी को कहता हूं कि मेरी ओर तू होकर आना। क्षमतानुसार साहस करना चाहिए। क्षमता हो इतनी ही स्पर्धा करनी चाहिए। इन पांच व्यक्तियों को लेकर मुझे प्रसन्नता का भाव व्यक्त करना है।

फूलछाब ने बारह किताबें प्रकाशित की। मेघाणी परंपरा का स्मरण किया। हम पुस्तक लिख न सके, परंतु अर्पण करने का विशेष आनंद होता है। मैं केवल पुस्तक अर्पण नहीं करता हूं, पर खरीदता भी हूं। केवल सलाह देकर चला जाय यह साधु ऐसा नहीं है। पुस्तक खरीदना माने अपने घर में ठाकोरजी की पदरावनी करनी। यह भाव आना चाहिए। गुजराती भाषा को कोई आपत्ति नहीं आनी चाहिए। हमारे पास कलम लेकर बैठे हुए कितने लोग हैं? कभी ऐसा लगता है कि हमने गुजराती को कितनी कठिन बना दी है? शिवमंगलसिंह 'सुमन' याद आते है -

मैं क्षिप्रा की तरह सरल-तरल बहता हूं।
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूं।

तो बाप, ऐसे कार्यक्रम में आना अच्छा लगता है। सभी अखबारों को अपना-अपना एक स्थान होता है।

अपने-अपने विचार होते हैं। पर आज कुछ कहूं तो ऐसा लगता है कि 'फूलछाब' के साथ मेरा सालों पुराना विश्वास संबंध रहा है। 'फूलछाब' कुछ अगर किस्म का अखबार है। साहब, वृक्ष को एक फूल फूले इसके पीछे कितनी प्रक्रिया होती है तब जाकर एक फूल खिलता है। पूरी डालिया भरने के लिए कितने सारे फूल चाहिए? फूल चाहे किसी भी वृक्ष का हो, वह फूल वृक्ष में परिणत हो उस से पूर्व उसे कितनी प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। उसके मूल गहरे होने चाहिए। मुझे तटस्थ भाव से लगता है इस 'फूलछाब' का फूल ऐसा खिला कि इसका मूल कुंदनभाई, आपकी परंपरा के जो मूल्य है वही उसका मूल है। पांच-दस कोपी कम हो जाय तो कोई बात नहीं पर मूल्य कम हो जाय तो फूल खिलने बंद हो जाय। कथा में अधिकतम संख्या हो जाय यह कथा का मापदंड नहीं है। 'फूलछाब' के मूल में अमृतबापा से लेकर जो पूरी प्रवाही परंपरा है, मूल्य है। कुंदनभाई ने अभी कहा कि इसमें कौन किसको खरीदता है यह तय नहीं होता ऐसी परिस्थिति है। साहब, अखबार में छप जाय तो दुनिया यही कहे कि अखबार में छप गया। लोगों को इतना सारा भरोसा है अखबार पर। तब अखबार का दायित्व बढ़ जाता है।

तो वृक्ष पर फूल खिला इसके मूल में मूल्य है। यह मूल्य बहुत ज़रूरी है। फिर वृक्ष का तना जो बहुत मजबूत होता है। डाल डाले पत्ते हिले पर तना न हिले न डुले। तना माने निष्ठा। किसी भी परमतत्त्व में निष्ठा। ऐसे तनेवाले वृक्ष, फूलतक गति करते हैं। फिर कितनी सारी शाखाएं फैलती है। वृक्ष की कितनी बड़ी महिमा! यह अखबार कितनी नई-नई शाखाएं फैला रहा है। इसकी पूर्ति के विविध विषय। तदुपरांत मानवसेवा समाजसेवा कितनी सारी सेवाओं की शाखाएं फैली हुई है। मूल्य मजबूत है और निष्ठामय तना है।

पर्ण माने पता। अखबार के भी पर्ण होते हैं। पर्ण महत्त्वपूर्ण है। साहब, अनुसंधान पढ़ना ही पड़े। देश और समाज की वास्तविक स्थिति को अखबार सही रूप में प्रस्तुत करे। धर्मग्रंथ न पढ़े तो कोई बात नहीं, पर आज की स्थिति को ध्यान से पढ़िए। शायद यही आपका पारायण है। यही पारायण हमें सत्यपरायण, प्रेमपरायण कर सके। फिर फूल खिले। पहले वह कली के रूप में है। सूर्य प्रकाश उसे क्षण प्रतिक्षण विकसित करे। उस वृक्ष ने समाज को बहुत कुछ दिया है। एक फूल नहीं, परंतु डालडाल पर फूल खिलाता है। खुश्बू माने फूलों का समूह। यह सब इकठ्ठा हो तब डलिया भर जाय। तब फूलों की डली महक फैलाय।

मैं मानता हूं कि 'भूतकाल' को सुगंध की खबर है और कीमत की भी। साहब, इत्र की दुकान में बैठनेवाले को इत्र की सुगंध नहीं आती। हम सुगंध लें पर हमें कीमत की खबर न हो। कभी-कभी किसी अखबार को कीमत की खबर होती है और खुश्बू की भी। इससे ये दोनों वस्तु जहां जुड़ती है वहां कुछ अगल ही होता है।

मैं फिर से एक बार पांचो व्यक्तियों को नमन करता हूं। अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। 'फूलछाब' के इस विशाल यज्ञ में अपने हृदय को भाव की आहुति देता हूं और उस भाव से केवल 'इदं यज्ञये न मम:।'

('फूलछाब अवॉर्ड-२०१३' अर्पण समारोह में राजकोट (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक २-१०-२०१३)

भजन साधन नहीं, साध्य है

'संतवाणी अवॉर्ड' अर्पण समारोह में मोरारिबापू ने भजन महात्म्य किया

विनोबाजी ने वेद की सात वाणी की बात कही है। वेद में सात प्रकार की वाणी की बात है। विनोबाजी ने उसका पृथक्करण किया है। विनोबाजी ने मौलिक अर्थ दिए हैं। यहां संतवाणी निमित हम एकत्र हुए हैं। मेरी दृष्टि में पांच वाणी घूम रही है।

एक तो जिसकी चर्चा शाम को हुई वह आगमवाणी। हेमंतभाई ने गा कर बताई है। व्याख्या नहीं करनी है। दूसरा क्षेत्र, ब्रह्मवाणी का है। इस पर बहुत कहा जा सकता है। जिसका अभ्यास-अनुभव हो वह इस पर ज्यादा बोल सकता है। अनुभूतिशील न बोल पाय, क्योंकि अनुभूति में फिर बोलना बंद हो जाता है। तीसरी वेदवाणी है। 'वदे वेदवाणी रे...' वेद यह कोई धर्मग्रन्थ नहीं है। वेद सब का हैतो ही वेद है। वेद सबसे बड़ी विद्या है। चौथी आकाशवाणी। चाहे वह बाह्य आकाश हो, या भजनानंदी का अंत:करण आकाश हो, चिदाकाश हो वहां से प्रकट होती वाणी को आकाशवाणी कहते है।

पर यह संतवाणी है। अभी जिसकी पूर्णिमा देश और दुनिया ने मनाई वह गुरुनानक जयंती; माने गुरुवाणी चाहे संतवाणी भी कहे। भजन की कई विधाएं हैं ऐसे गाया जानेवाला, लिखा जानेवाला, समझ में आनेवाला, समझाया जानेवाला, सुननेवाला, कथन करता और भीतर का भजन! 'जेने सदाय भजननो आहार' यह पंक्ति सोच समझकर रखी गई है।

'भगवद्गीता' में तीन प्रकार के राजसी, तामसी और सात्त्विक आहार बताए हैं। संतवाणी स्पर्धा से गाई जाय तो वह तामसी आहार है। वहीं से संघर्ष

जन्मता है, संघर्ष से अशांति होती है और 'अशांतरूप: कुत: सुखम्।' हमारे निरंजनभाई का आग्रह है कि भजन का असली रूप बनाए रखना है। पर संतवाणी के साथ वायोलिन, बेन्जो, मंजीरा, तबला कुछ भी हो उसका हम वर्तमान युग में स्वीकार करे। परंतु प्रथम क्रम तो असल का ही रहे, जो अपनी मूल रीति है। मैं भी चाहता हूं कि असल वस्तु तो रहे ही। मेरा इससे अलग मत नहीं है। वायोलिन, हार्मोनियम, बेन्जो, शहनाई इन्हें हम आज के हिसाब से स्वीकृत करे। हा, संतवाणी दबनी नहीं चाहिए। भजनिक दबना नहीं चाहिए। यह माईकवाले को संभालना चाहिए। मूल में तो वाणी है।

तो बाप! सभी साज के साथ भजन पेश होता है। पर भूल का निर्वाह होना चाहिए। देशकालानुसार यह भी स्वीकारना रहा। इतना विशाल समुदाय लोकसंगीत और संतवाणी को स्वीकारता हुआ तो इस विद्या को भी सुरक्षित रखे। अत: हमे यहां सभी की वंदना की। पर इसमें अतिरेक हो तो वह राजसी भजन है।

साहब, आरोग्य, बल, आयुष्य, सुख और प्रीत वर्धन करे वह सात्त्विक आहार है। जो भजन गायक-श्रोता का आयुष्य बढ़ाये। भजन आयुष्य बढ़ाता है। आरोग्य बढ़ाए। सवाल मूल में भरोसे का है। जिससे बल, सुख, प्रीति और रस में वृद्धि हो।

पर, जिसे बहुत तीखा, खट्टा, नमकीन भाए यह रजोगुणी आहार है। हम बीच में कुछ विनोद कर ले, गाते-गाते कुछ कहें, बातें करें तब वह आहार बहुत ही सुंदर होता है। पर वह रजोगुणी है। बासी, जूठन भरा और समय बीता हुआ और केवल स्पर्धा हेतु प्रस्तुत आहार तमोगुणी होता है। परंतु नरसिंह, मीरां, कबीर, गोरखनाथ के भजन निश्चितरूप से त्रिगुणातीत है। अत: आज भी सुरक्षित है। उन्हीं का आनंद लेकर मौज में रहते हैं।

चाहे तमोगुणी हो या रजोगुणी बीच में भजन होगा तो सभी गुण इधर-उधर हो जायेंगे। भजन ही गुरु बनेगा। ऐसे भजन अनेक विद्या से प्रस्तुत किए जाते हैं। भजन साधन नहीं, साध्य है। भजन द्वारा भगवान मिले ऐसा नहीं है, भजन द्वारा भजन मिलता है।

'रामचरित मानस' में तो भजन की कितनी विधाएं बताई है। संक्षेप में किसी भी तरह गाया, लिखा, समझाता, पीया जाता, सुना जाता, रचा जाता भजन, भजन है। चुंबक कील को खींच लेता है मूल में लोहा होना जरूरी है। हम लौह की तरह हो तो रजोगुणी, तमोगुणी, सत्त्वगुणी हमें खींचते हैं। साहब, त्रिगुणातीत भजन तो तभी शुरू होता है जब हमें गाना न पड़े। जिसके भजन हम गाते हो फिर वह स्वयं गाये। 'जग जपु राम राम जपु जेहि।' रामभजन भरत एक अवस्था तक करते थे। फिर वह भजन पूरा हो गया। और राम स्वयं भरत के भजन गाने लगे। 'अब सुमिरन मेरा हरि करे, मैं करूं विश्राम।' उसी क्षण मान लेना भजन हमारा साध्य है।

ऐसी संतवाणी प्रस्तुत होती हो उसके मूल को पकड़कर उसकी वंदना करने का यह सहज संकल्प था। आप सबने सहयोग दिया। यह उपक्रम प्रत्येक वर्ष का है। जब तक होगा, तब तक करते रहेंगे। नहीं तो खेल खत्म। भजन चूक जाय ऐसा कोई धंधा नहीं करना है।

तो बाप, भजन को नहीं छोड़ना है। यह बात बनी रहे तो अभ्यास में से अनुभव में जायेंगे और अनुभव में से अनुभूति में जायेंगे। जिस दिन भजनिक अनुभूति में गया उसी दिन दुनिया बहुत छोटी पड़ जायेगी। अंत में कहता हूं उसके नाम से बड़ा भजन कोई नहीं है। वसीम बरेलवी का शे'र सुनाकर अपना वक्तव्य पूरा करूं -

वो सिर्फ़ नाम लेकर रह गया।
एक दीवाना बहुत कुछ कह गया।

('संतवाणी अवॉर्ड-२०१३' अर्पण समारोह में कैलास गुरुकुल, महुवा (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक ८-११-२०१३)

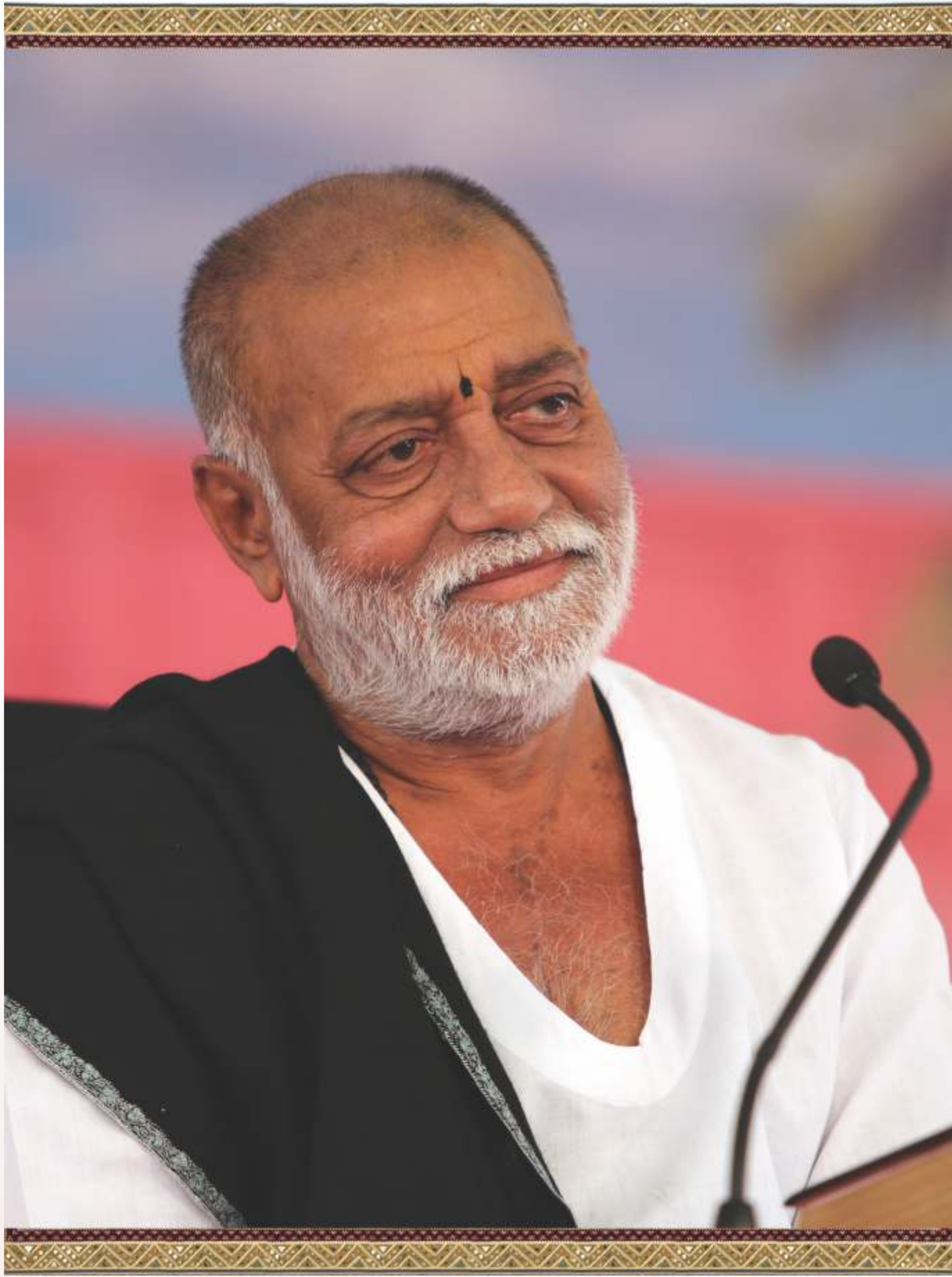

गुरुपदरज की महिमा अवश्य है । गुरुपदरज यानी गुरु के चरण की रज । चरण की महिमा अद्‌भुत है । मैं तो उसका समर्थक और व्यक्तिगत रूप में पूजक हूं । लेकिन आज की दुनिया को समझाने के लिए ओर सरल पड़े इसलिए कहूं कि पद का अर्थ चरण तो है ही, लेकिन गुरुपद यानी गुरु ने गाया हुआ पद, पंक्ति । जैसे कबीर का पद, रवि का पद, भाणसाहब का पद। और वह पद्य में ही कहना जरूरी नहीं, वह गद्य में भी हो । पद गाने के लिए भी हो और एक गद्यखंड में भी हो । जैसे भजन में आखिरी पद में सार हो, अर्क हो, निचोड़ हो। हमारे यहां वेदांत में एक वाक्य प्रसिद्ध है, 'पद-वाक्य प्रमाणं ।' गुरुजनों के पद पद-वाक्य प्रमाण माने जाते हैं । गुरु का एक भजन, पद्य या गद्य, पूरा का पूरा हम न पचा सके तो चिंता नहीं, लेकिन उसका सूक्ष्म रज जितना भी हमारे जीवन में आ जाय तो हमारा जीवन धन्य बन जाय ।

– मोरारिबापू

|| जय सीयाराम ||